गद्य-पाठ-माला

चौथा भाग

१—उपदेश-मुक्तावली

१—ईश्वर पूर्ण और पवित्र है। उसको लोग
के लिये पूर्ण आदर्श नहीं है।

२—पिता, माता और गुरु ईश्वर के प्रति
और साक्षात् देवता की भाँति पूज्य हैं।

३—पवित्र हृदय ही स्वर्गलोक और ई
निवास-भूमि है।

४—पाप-हृदय नरक है और पिशाचों
५—नेत्र, आँसुओं से धुले बिना पवि
अगोचर सत्य-राज्य को देख नहीं पाते।

६—उन्नति के पाँच साधन हैं—१ सु
४ उत्साह ... ५ ईश्वर की कृपा।

... मृत्यु के ...
... ... जगा कर ...

सफलता हो तब भी नामवरी मिलती है और सफलता न होने पर भी नामवरी मिलती है।

९—चन्दन के वृक्ष के समीप रहने से अन्य छोटे छोटे वृक्ष भी चन्दन की सुगन्धि पा जाते हैं। केवल बाँस सिर उठाये रहता है, इसी लिये वह कोरा बाँस का बाँस ही रहता है।

१०—चित्र में श्वेत और श्याम दोनों रंगों का रहना आवश्यक है। मानवी जीवन में सुख और दुःख दोनों ही समान रूप से अपेक्षित हैं।

११—बड़े बनना चाहो तो छोटे बनो। ईश्वर आकाश से भी बड़े और छोटे से भी छोटे हैं। वह बालू के कनों के भी भीतर हैं। छोटे बनने पर भी उन्हें दुखी नहीं होना पड़ता।

१२—आगे पीछे—भूतभविष्यत् के सोच में पड़, व्यर्थ समय नष्ट न कर, वर्त्तमान में अपना कर्त्तव्य पूरा करो। ऐसा करने से भूत का दोष मिट जायगा और भविष्यत् का अभाव भी पूरा हो जायगा।

१३—कायर भाग्य की दुहाई दे आलसी बनते हैं। साधुजन हानि लाभ को ईश्वर के हाथ में सौंप, अच्छे कामों के साधन में प्राणों तक की परवाह नहीं करते।

१४—जो मनुष्य सब तरह हरि को भजता है, सब सोचों को त्याग कर केवल ईश्वर को सोचता है, ईश्वर भी उस भक्त की बात सोचा करते हैं और उसका भार स्वयं उठा लेते हैं।

१५—जो गेहूँ का दाना आग पर अपना जान बचाता है, उसका जीवन व्यर्थ है। जो दाना मर कर सड़ जाता है उससे सैकड़ों गेहूँ उपजते हैं। स्वार्थी जन का जीवन विफल है। जो परहित में

अपना जीवन उन्नत करता है उसका जीना सफल
अमर भी बन जाता है।

२—नीति-पुष्पावली

१—पारस पत्थर के छूने से लोहा सोना ब
है। सत्संग से असाधु साधु बन जाता है। स
कर गंगा का स्वादिष्ट मधुर पवित्र जल भी
तरह की कुसंग से भले आदमी का स्वभाव भ

२—इसलिये यदि किसी का स्वभाव
यह चाहिये कि उसका संग कैसे जनों का
भी दुर्जन का संग मत करना। सुजन के
न हो उनसे सुधे एवं हितकारी उपदेश
के पेड़ से फल फूल मिलने की तो आशा
तो मिलेगी।

३—संसार में सांप और खल के
अवसर मिलने पर दोनों ही प्राण उ
है। सांप तो भीतर बाहिर एक सा है
और मुख में अमृत यानी मिठा
है पर खल

है। खल को मक्खी और सज्जन को हंस समझो। खल दूसरों
दोषों ही को जानता है। सज्जन गुण ही का ग्राहक होता है।

४—घर के बाहिर अनेक उपद्रवों को देख चूहे घर के भी[illegible]
आ बैठते हैं। जिस घर में ये बैठते हैं वहां रक्खी हुई यावत् वस्तु[illegible]
को दांतों से काट कर नष्ट कर देते हैं। मानवी शरीर के भीतर भी [illegible]
चूहे घुसे हुए हैं। ये भी रात दिन गृहस्थ का अनिष्ट ही किया कर[illegible]
हैं। विवेक नामी बिल्ली बिना पाले, वे छः चूहे नष्ट नहीं किये [illegible]
सकते। यदि उन चूहों को नष्ट करवाने में प्रमाद किया जायगा [illegible]
वे ऐसा करने वाले को नष्ट कर डालेंगे। काम, क्रोध, मद, मो[illegible]
मत्सर और लोभ ये ही छः चूहे या षड्रिपु हैं।

५—अच्छे कुल में जन्म लेने ही से कोई अच्छा नहीं कहा [illegible]
सकता। उपजाऊ खेत में जो कांटे के पेड़ उग आते हैं, क्या उन[illegible]
बेधने की शक्ति नहीं रहती?

७—महान् के दुर्वचन तो सह भी लिये जा सकते हैं किन्तु मद[illegible]
के बल से बलवान् छोटे मनुष्य के दुर्वचन नहीं सहे जाते। सूर्य [illegible]
प्रचण्ड ताप तो सह लिया जाता है, परन्तु सूर्य की किरणों से त[illegible]
हुई बालू की गरमी नहीं सही जाती।

[illegible]म की प्राप्ति या उत्तम की [illegible]
के बराबर [illegible] है। मध्यम की प्राप्ति [illegible]
[illegible] है। अधम की प्राप्ति [illegible] की रक्षा के समान है।

[illegible]

[illegible] आ जाता है।

[illegible] की निवृत्ति न

समुद्र का पड़ोसी होने तथा जहाज़ों तिजारत की बदौलत माला-
दर्जों की तरक्की पाते रहने के कारण इस समय कलकत्ता मात्र
जितना प्रसिद्ध और लक्ष्मी के कृपापात्रों का घर हो रहा है, उतना
बंबई के सिवाय और कोई दूसरा शहर नहीं। साथ ही इसमें इस
नगर में जैसे धनियों और बड़ी बड़ी सड़कों तथा भवनों की भर
मार है, उसी तरह मज़दूरी पेशे वाले गरीबों और उनके रहने के लिये
छोटे, तंग, गन्दे और पुराने मकानों तथा उसी ढब की गंदी गलियों
की भी इस नगर में कमी नहीं है। अस्तु, इस समय हम कलकत्ते
की खूबी और खराबी का बयान करने के लिये तैयार नहीं हैं, जो
यहां गुज़ाश्ता हाल लिख कर बालकों का अमूल्य समय नष्ट करें
बल्कि यहां की एक छोटी सी घटना को लिख कर हम बालकों को
एक अनूठा रहस्य दिखाया चाहते हैं।

कलकत्ते की एक तंग अंधेरी और गंदी गली के अन्दर पुराने
ढंग के एक मकान की नीचे वाली कोठरी में हम एक स्त्री को
फटे पुराने आसन पर बैठ कर परमात्मा के ध्यान में निमग्न देख रहे

है। इस घर में यद्यपि इन्हीं तरह और भी घर ग
रहते हैं और उनकी बातचीत तथा आपस में भ
कारण इस समय घर में कोलाहल सा हो रहा है,
का चित्त किसी तरह परमात्मा के ध्यान से डिगता
नहीं पड़ता। वह आँखें बन्द किये माला जपत
लगी हुई है और उस कोठरी का दरवाज़ा
रहा है।

जब हम उसके सामने की ओर ध्यान देते
ग़रीबी और लाचारी का अंदाज़ा सहज ही
एक कोने में फटे पुराने कपड़े की छोटी बग
कोने में पानी की एक ठिलिया और उसके प
का एक गिलास पड़ा है। ऊपर की तरफ़ प
टें का एक हाँड़ी टंगी हुई है, जिसमें मालूम
नित्य चूल्हे पर चढ़ा करती है। पानी वाले
चूल्हा और उसके सहारे छोटी छोटी
मालूम नहीं। दाईं तरफ़ (जहाँ यह स्त्री
सा चौकूंटा चबूतरा बना है, जिस पर
उसीके सामने यह स्त्री बैठी हुई, इस
के साथ उपासना कर रही है

बालक—बाहर हरी खड़ा है, कहता है पाठशाला आने का समय हो गया। मुझे भूख लगी है, बिना खाये मैं पाठशाला कैसे आऊँ?

स्त्री—(आँखें पोंछ कर और माला रख कर) बेटा! आज तो खाने को कुछ भी नहीं है। मैं दो तीन जगह गई थी। कहीं से गेहूँ भी नहीं मिले जिन्हें पीस कर दे आती और मजदूरी के दो पैसे ले कर तेरे खाने का प्रबन्ध करती। नवीन की माँ ने गेहूँ देने के लिये दस बजे बुलाया था सो अब मैं जाती हूँ।

बालक—तो मैं पाठशाले न जाऊँगा। मुझे बड़ी भूख लगी है। तू तो रात दिन पूजा ही किया करती है, खाने को तो लाती नहीं।

स्त्री—बेटा! क्या करूँ? तेरे ही लिये तो रात दिन पूजा किया करती हूँ। ठाकुर जी से तेरे खाने के लिये माँगती हूँ।

बालक—क्या तेरे माँगने से ठाकुर जी खाने को दे देंगे?

स्त्री—क्या न देंगे, तमाम दुनिया को देते हैं तो क्या मुझीको न देंगे।

बालक—तो देते क्यों नहीं, मुझे बताना ठाकुर जी कहाँ है? मैं भी उनसे माँगू।

स्त्री—(डबडबाई आँखों से) ठाकुर जी बड़ी दूर रहते हैं, इसीसे मेरी पुकार अभी तक उन्होंने नहीं सुनी।

बालक—तो दूसरों की पुकार कैसे सुनते हैं जिन्हें भोजन के लिए देते हैं?

स्त्री—कुछ लोग [illegible] रात दिन के पुकारने से सुन भी लेते हैं [illegible] जब सुन लेते हैं तब सब कुछ देते हैं।

बालक—[illegible] सब कुछ देते हैं?

स्त्री—हाँ बेटा। सब कुछ देते हैं।

इतना कह स्त्री ने पूजा समाप्त की और लड़के के
आँचल से उसका मुँह पोंछने लगी। लड़के ने पुनः
शुरू किया।

बालक—हाँ माँ! तो तू ठाकुर जी का ठिकाना तो

स्त्री—बेटा! ठाकुर जी बैकुण्ठ में रहते हैं। वे सब
हैं। उनका ठिकाना क्या?

बालक—बैकुण्ठ कैसा है?

स्त्री—बैकुण्ठ बड़ा भारी भवन है। चारों तरफ
हरात जड़े हैं। वहाँ बड़ा आनन्द रहता है

बालक—हैमिलटन कम्पनी की दूकान में भी
वहाँ तो मैं नवीन भैया के साथ
मगर दरबान ने भीतर जाने नहीं
निकाल दिया।

स्त्री—बेटा! मैं क्या जानूँ हैमिलटन कं
कहाँ है? पर ठाकुर जी के बराबर
न होगा।

ठाकुर जी

खाने पीने का प्रबन्ध करूँ। आज तू पाठशाला मत जा। कल जाइयो।

बालक—अच्छा मा! तू जा। मैं यहाँ बैठा बैठा जिग्रूँ पढ़ूँगा मगर मुझे पानी पिलाती जा। कुछ तो पेट भर जायगा।

स्त्री की आँखें अच्छी तरह डबडबा आईं किन्तु उसने उन्हें पोंछ डालीं, जिसमें गोपाल को मालूम न हो और पानी पिला कर वह घर के बाहर निकल गई।

२

सन्ध्या होने में अभी एक घंटे की देर है। कलकत्ते के बाज़ारों की सजावट पल पल में बढ़ती जाती है। और बज़ारों को छोड़ कर हम उस बाज़ार की चर्चा करना चाहते हैं जहाँ की सड़क के दोनों ओर के दो मंज़िले मकान सैर तमाशे के शौक़ीनों के दिल में ठंडक देने और मनचलों की झुकी हुई गर्दनें ऊपर की ओर उठा देने वाले हैं। इसी बाज़ार में हम एक दोहरे टपवाली लैंडो (फिटन जिसके आगे पेजर[1] की जोड़ी जुती हुई है, धीरे धीरे आते देखते हैं।

इस गाड़ी में एक अधेड़ उम्र का रईस बैठा हुआ है और उसके सामने दो आदमी (जो उसके आश्रित हैं) बैठे कभी कभी कुछ बातें करते जाते हैं। रईस की निगाह बाज़ार के दोनों तरफ़ की दूकानों पर पड़ रही थी और उसके मन में तरह तरह के भाव पैदा होते जाते थे। अकस्मात उस रईस की निगाह एक बालक के ऊपर पड़ी जो सड़क के किनारे पर खड़े हुए एक लेटर बकस के भीतर चिट्ठी डालने का उद्योग कर रहा था। मगर उसके मुँह तक [illegible] न जाने के कारण [illegible] तरह तरह का [illegible]

[illegible]

कोशिश कर रहा था। धीरे धीरे वह फिटन भी उसके पास तक आ पहुँची और उस लड़के की सूरत शक्ल तथा इस समय की अवस्था पर रईस को बड़ी दया आयी। उसने समझा कि "यह ग़रीब लड़का जिसके बदन पर साबित कपड़ा तक नहीं है शायद किसी दूकानदार का नौकर है और उसीने उस बेचारे को उसकी सामर्थ्य से बाहिर काम करने की आज्ञा दी है और यह बेचारा डर के मारे अपना काम पूरा किये बिना वहाँ से टलना नहीं चाहता।

रईस ने अपने एक मुसाहिब को गाड़ी से नीचे उतार कर उस लड़के की कठिनाई को दूर करने का इशारा किया। गाड़ी खड़ी की गई और वह मुसाहिब लड़के के पास गया और उससे बोला—"ला, तेरी चिट्ठी मैं इस बंबे में डाल दूँ।" इसके जवाब में लड़के ने सलाम कर के चिट्ठी उसके हाथ में देदी। मुसाहिब की निगाह जब लिफाफे पर पड़ी तो वह चौंक पड़ा और वह लिफाफा रईस के पास साथ दिखाने के लिये ले आया। लड़के को यह बात कुछ बुरी मालूम हुई। क्योंकि उसे अपनी चिट्ठी के छिन जाने का भय हुआ। इसलिये वह भी उस आदमी के पीछे पीछे गाड़ी के पास तक चला गया और दोनों हाथ से उस रईस के मुँह की तरफ देखने लगा। उस बालक की इस अवस्था पर रईस का दिल और भी [illegible] उसने लिफाफे पर एक नज़र डालने के बाद उस [illegible] यह तुम्हारी चिट्ठी है न लिो, इस पर [illegible] पता तुम दिखाने के लिये [illegible]

श्रीठाकुर जी महाराज लक्ष्मीनाथ के पास चिट्ठी पहुँचे।
स्थान—बैकुण्ठ।

रईस ने अंगरेज़ी में उस पर यह लिख दिया।

Mr. PRATAP NARAYAIN
Harrison Road
CALCUTTA

लड़का अंगरेज़ी नहीं जानता था, इसलिये वह इस भेद कुछ भी न समझ सका।

इसके बाद रईस ने उस लड़के से जो बातचीत करने में बा तेज़ और ढीठ भी था पूछा—"तुम्हारा मकान कहाँ पर है?

लड़का—(हाथ का इशारा करके) उस तरफ़ बड़ी दूर है।

रईस—(प्यार से उसका हाथ पकड़ कर) आओ हमारी गाड़ी बैठ जाओ हम तुम्हें तुम्हारे घर तक पहुँचा देंगे।

लड़का गाड़ी पर सवार हो गया। रईस ने उसे अपनी ब में बैठा लिया। गाड़ी पुनः धीरे धीरे रवाना हुई और रईस त उस लड़के में यों बातचीत होने लगी—

रईस—यह चिट्ठी तुमने अपने हाथ से लिखी है न?

लड़का हाँ।

रईस—किसके कहने से लिखा है

लड़का—अपनी खुशी से।

रईस—तुमने कैसे जाना कि ठाकुर जी किस का नाम है?

लड़का—मेरी माँ रोज उनकी पूजा किया करती है। उन्हींसे मैंने सब कुछ पूछा था।

रईस—तुम्हारी माँ ने भेजा दिया।

लड़का—मेरी माँ कभी झूँठ नहीं बोलती सब कोई कहा करते हैं कि जग्गो की माँ झूठ नहीं बोलती।

रईस—तो क्या यह चिट्ठी तुमने अपनी माँ से छिपा कर लिखी है?

लड़का—हाँ, (रोनी सूरत से) अगर मेरी माँ सुनेगी तो मुझे मारेगी।

रईस—(लड़के की पीठ पर हाथ फेर कर) नहीं नहीं, तुम डरो मत। हम तुम्हारी माँ से यह हाल न कहेंगे। हमारा कोई आदमी भी ऐसा न करेगा। अच्छा यह तो बताओ कि चिट्ठी में तुमने क्या लिखा है?

इसका उत्तर बालक ने कुछ भी न दिया। रईस ने दो तीन बार यही बात पूछी किन्तु कुछ उत्तर न पाया। अन्त में यह सोच कर वह चुप हो रहा कि अन्त में यह चिट्ठी मेरे ही यहाँ पहुँचेगी, क्योंकि मैंने उस पर अपना पता लिख दिया है। अस्तु, जो कुछ उसमें होगा मालूम हो जायगा।

इतने ही में लड़का चौंक पड़ा और गद्दी पर से कुछ उठ कर बोला यह मेरी गली आ गई, मुझे उतार दो।

रईस की आज्ञानुसार गाड़ी खड़ी की गई और वह लड़का उतर कर अपने उसी मकान में चला गया जिसका परिचय हम ऊपर दे चुके हैं। मगर रईस का इशारा पा कर उसका एक आदमी लड़के के पीछे पीछे गया और उसका मकान अच्छी तरह देख भाल आया। इसके बाद गाड़ी वहाँ से रवाना हो कर तेज़ी के साथ एक तरफ़ को

३

हमारे परिचित रईस महाराजकुमार प्रतापनारायण की अवस्था आज कुछ निराली ही ढंग की हो रही है। यह ऊँचे दर्जे का रईस और ज़मींदार था। उसे किसी बात की कमी न थी। सन्तान न होने पर भी यह दिन रात अपने को प्रसन्न रखता था। किन्तु आज मालूम होता है कि उसकी तमाम बनावटी प्रसन्नता न मालूम कहाँ चिना गयी? आज उसके मन में किसा सच्ची प्रसन्नता की नदी उमड़ रही है, जिसके कारण उसकी बड़ी बड़ी आँखें प्रेम के आँसुओं का स्रोत प्रवाहित कर रही हैं। गोपाल के हाथ की लिखी हुई काली चिट्ठी जिस पर उसने अपना पता लिख कर डाक के बंबे में छुड़वा दी थी, उसके हाथ में थी और वह अपने कमरे में अकेला बैठा हुआ उसे बार बार पढ़ कर भी अपने मन को सन्तोष नहीं [illegible] सकता था। उस चिट्ठी में यह लिखा था—

"श्रीठाकुर जी महाराज लक्ष्मीनाथ जी,

मैंने अपनी माँ से सुना है कि तमाम दुनिया को तुम खाने [illegible] लिये देते हो। जो कोई जो कुछ माँगता है, तुम वही देते हो। तुम्हा[रे] भण्डार में सब कुछ भरा रहता है, तो फिर मुझे क्यों नहीं देते दयानिधान! आज मैं दिन भर का भूखा हूँ, मेरी माँ न मालू[म] कितने दिनों की भूखी है। मेरे घर का रोज़ ही यह हाल रहता है [illegible] इस तरह मैं किस तरह लिखा करूँगा? कृपा कर मेरे लिये दो सेर लड्डू [illegible] बन्दोबस्त कर दीजिये जिससे मैं मेरी माँ और मेरे साथ खेलने वा[ले] लड़के भी रोज़ खा लिया करें। मैंने आज तक लड्डू कभी [illegible] [illegible] मैं उसका स्वाद नहीं जानता।

[illegible] [illegible] [illegible] अपने हृदय पर हाथ रखा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उसने दिन भूतभुते[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दिन [illegible] [illegible]

...र न हुआ। आज मालूम हुआ कि मैं कौन हूँ और मुझे ...ा चाहिये। हे ईश्वर! तू धन्य है। निस्सन्देह तुझ पर जो ...और विश्वास रखता है, उसीका बेड़ा पार है। अच्छा ...नन! अब मैं भी तेरे दरवाज़े की खाक छानूँगा और ...कि तेरी लंबी भुजा के सहारे मुझ अधम का क्योंकर उद्धार ...!"

...सके ही मैं कमरे का दरवाज़ा खुला और विपिन बाबू वकील ...टे की सूरत दिखायी दी जो बड़े ही नेक भोलेभाले तबियत ...दमी थे और जिन्हें महाराजकुमार प्रतापनारायण ने एक वसी- ...लिखने के लिये बुलाया था।

४

आओ देखें तो सही उस समय हमारा गोपाल कहाँ है और क्या ...र रहा है? देखो, वह अपनी मा के पास बैठा हुआ मीठी मीठी ...बातें कर रहा है और वह डरता डरता कह रहा है कि "मा मैंने ठाकुर जी को चिट्ठी लिखी है, वह आज ज़रूर पहुँच गई होगी। तू कहती थी वह पल भर में तमाम दुनियाँ की खबर ले लेते हैं। अगर ऐसा है तो बस, अब थोड़ी ही देर में मेरे पास लड्डू की हाँडी पहुँचा चाहती है। आज तू मेरे खाने की फ़िक्र मत कर" इत्यादि और उसकी मां अपनी आँखों से आँसुओं की धारा बहा रही है। इतने ही में दरवाज़े के बाहर से किसी ने गोपाल गोपाल कह कर पुकारा, जिसे सुन कर गोपाल दौड़ता हुआ घर से बाहर चला गया। थोड़ी ही देर के बाद जब लौट कर अपनी मां के पास गया तब उसके हाथ में ... से भरी हुई एक हाँडी थी और दूसरे हाथ ... हुआ अपनी मां से कहा— देख ... गोपा... ...ही का आदमी लड्डू ले कर आता

भी होगा। देख कैसा बढ़िया लड्डू है। अहा हा! एक चिट्ठी भी ठाकुर जी ने भेजी है। देख यह चिट्ठी है—

गोपाल की बातें सुन उसकी माँ भौचक सी हो गई और आश्चर्य भरी निगाहों से गोपाल का मुँह देखने लगी। दिल के अंदर उठे हुए जोश ने उसका गला भर दिया था और वह कुछ बोल नहीं सकती थी। जब गोपाल ने चिट्ठी उसके हाथ में दी तब वह उसे खोल कर पढ़ने लगी। उस पत्र का सारांश यह था।

ठाकुर जी ने यह सेर लड्डू रोज़ तुम्हारे पास भेजने की आज्ञा दी है सो आज से बराबर तुम्हारे पास पहुँचा करेगा। ठाकुर जी ने तुम्हारे लिये और भी बहुत कुछ प्रबन्ध किया है जिसका हाल कुछ दिनों बाद मालूम होगा।

गोपाल की माँ को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वह आश्चर्य भरी निगाहों से गोपाल का मुँह देखती और लड्डू तथा चिट्ठी की तरफ ध्यान देती। उसकी समझ में कुछ भी न आता था कि यह क्या हुआ और कहाँ कर हुआ? किन्तु गोपाल को इन सब सोच विचारों से क्या प्रयोजन? वह उसी समय थोड़े से लड्डू ले कर घर के बाहर निकल गया और अपने साथी लड़कों में प्रसन्नता पूर्वक बाँट कर लौट आया। इसके बाद स्वयं भी लड्डू खाये [illegible] कर अपनी माँ को भी खिलाये।

[illegible]

और मोलेयन ने उसके जीवन को कैसे पलट दिया है। महाराज-कुमार के मन पर गोपाल के सरल विश्वास का कैसा प्रभाव पड़ा है कि उसने अपनी समस्त सम्पत्ति का मालिक गोपाल को बना कर इसलिये मक्का-यात्रा की कि उसी भक्तवत्सल पतितपावन वैकुण्ठ-नाथ के प्रेम में अपना जीवन समाप्त कर के सच्चा सुख प्राप्त करें।

—पं० माधव प्रसाद मिश्र

४—सेठ प्रेमचन्द रायचन्द

जिन महापुरुषों ने निर्धन माता पिता के घर उत्पन्न हो, अपने बुद्धिबल से अपने प्रबल प्रयास से, संसार में सुयश प्राप्त किया है ; जिन महापुरुषों का नाम संसार भर में आज भी पूर्ण आदर की दृष्टि से उच्चारित होता है, उनमें बम्बई इलाके में सब से प्रथम प्रेमचन्द थे।

आपके पिता का नाम रायचन्द दीपचन्द था। वे सूरत के रहने वाले थे। इन्हीं के कुलपुत्र में [illegible] प्रेमचन्द का सन् १८३१ ई० में जन्म हुआ था। रायचन्द एक गरीब और सामान्य स्थिति के व्यापारी और दलाल थे। सूरत में इनका व्यापार ठीक न चलने के कारण वे सकुटुम्ब बम्बई आये और रायचन्द [illegible] नामक एक [illegible] करने लगे। प्रेमचन्द के पठन पाठन का सम्बो- [illegible] जिन्हें अंग्रेज़ी की शिक्षा दी जाने [illegible] सम्बन्ध का [illegible] था। एक [illegible] प्रेमचन्द के लिये [illegible]

विद्यालय को चार लाख पचीस हज़ार। बंबई में ... के मय को पाँच लाख। अहमदाबाद ट्रेनिंग कालेज ... सूरत की धर्मशाला में पैंसठ हज़ार। क्वीयर ... साठ हज़ार। एकादिश आर्फनेज को पचास हज़ार। जूनागढ़ गिरनार की धर्मशाला में चालीस हज़ार। भरोच में रायचंद पुस्तकालय को तीस हज़ार। सूरत में रायचंद दीपचंद शाला को बीस हज़ार। गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी को बीस ... "आनन्द" धर्मशाला में बीस हज़ार। सूरत स्वामी (... आश्रम को दस हज़ार। एलेक्जेंड्रा कन्या पाठशाला को ... भरोच लाइब्रेरी को पाँच हज़ार।

इन दानों के सिवाय गुजरात और काठियावाड़ के ७६ ग्रामों धर्मशालाएँ कुएँ और तालाबों के जीर्णोद्धार में उनके छः लाख ... गये थे। इन महानुभाव ने अपने जैनधर्म के मंदिरों और जैन ... के प्रचार के लिये दस लाख खर्च किये थे। इन सब रकमों के अतिरिक्त वे प्रतिमास आठ हज़ार रुपये ग़रीब कंगालों को बाँट करते थे।

सूरत और अन्य नगरों में मालूम पड़ जाने पर, विपद्ग्रस्त ... को भी अवश्य सहायता देते थे। इस खाते में इनके अढ़ा... लाख रुपये खर्च हुए थे। जैनियों को यात्रा में बड़ी अड़चनें पड़... करती थीं। जिनके ... में इनको डेढ़ लाख रुपये खर्च करने प... थे। ... इन्होंने एक लाख नव्वे हज़ार रुपये अर्प... ...।

जिस महानुभाव ने एक सामान्य गृहस्थ के घर जन्म ले... ... पुरुषार्थ से इतना विपुल वैभव प्राप्त किया उसे भी काल

गवान् ने न छोड़ा और ३१ अगस्त सन् १९०६ ई० को ये इस संसार से चल बसे।

सेठ जी यद्यपि अब इस संसार में नहीं हैं तथापि उनके यश की घटा गगनमण्डल में उनके गुण का प्रकाश फैला रही है और इतर जनों को शिक्षा दे रही है कि धन प्राप्त होने पर उसका किस प्रकार सदुपयोग करना चाहिये।

—श्रीगोविन्द जी नागर

५—कर्त्तव्य-पालन

कर्त्तव्य पालन में कठिनाई अवश्य होती है, किन्तु इससे हमें उसे बुरा नहीं समझना चाहिये। क्योंकि कर्त्तव्यपरायण मनुष्य को कभी कभी सांसारिक आमोद प्रमोद से भी वञ्चित रहना पड़ता है, कष्ट भी कभी कभी भोगने पड़ते हैं, कभी कभी दुरात्माओं द्वारा अनेक प्रकार का अपमान भी सहना पड़ता है। परन्तु इतना सब कुछ होने पर भी विद्वानों का मत यही है कि कर्त्तव्य-पालन में दृढ़ बना रहना चाहिये। कर्त्तव्य को अपना शासक समझना ठीक नहीं है, किन्तु उसे अपना सच्चा मित्र या सखा समझना चाहिये। क्योंकि यह मनुष्य को सांसारिक चिन्ताओं से बचा कर शान्ति-निकेतन के पथ की ओर अग्रसर करता है।

कर्त्तव्य-पालन करते हुए संसार की बहुत सी बातें दुःख [illegible] कुछ उनमें से दुःख से भरी भी होंगी और कुछ सस्ती भी। [illegible] आगामी उसका मूल्य कर्त्तव्य में समस्त [illegible] मनुष्य ने अपना जीवन [illegible] प्राप्त करने [illegible] धन सम्पत्ति बढ़ाने [illegible]

परन्तु कर्त्तव्य को भूल कर, इन मार्गों पर चलने से इन्होंने बद-
नामी भी खूब उठाई। यह सम्भव है कि कर्त्तव्यनिष्ठ मनुष्य अधि-
धन सम्पत्ति से वंचित रहे, तो भी वह जिस कुल या जाति में
जन्म लेता है उसके अन्तरात्मा में बड़ी सम्पत्ति छोड़ जाता है।

जो द्रव्य कर्त्तव्य-पालन करते हुए प्राप्त होता है उसीसे
सच्चा आनन्द प्राप्त होता है, अन्यथा चिन्ता, भय और दुःख क
कारण होता है और अनुचित बातों में व्यय होता है। यदि सोच
विचार कर कर्त्तव्य-तत्पर रह कर धन कमाया जाय और सदुपयोग
किया जाय तो स्वयं और दूसरे जन भी उससे बड़ा आनन्द भोगते
हैं। धनाढ्य पुरुष कर्त्तव्यहीन होने से अपने ऊपर अनेक दुःख
और आपत्तियाँ लाता रहता है और मरने के साथ ही उसका नाम
भी मर जाता है।

कर्त्तव्य के पथ पर चलना मनुष्य का धर्म तो है ही, किन्तु ऐसा
करने से वह कर्त्तव्यहीन, चरित्रहीन मनुष्यों में भी कर्त्तव्यनिष्ठा
और उत्साह की जागृति करता है। कर्त्तव्य-पालन ही से मनुष्य को
प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि तथा हृदय की शान्ति प्राप्त होती है और मनुष्य
जीवन सफल होता है। धन्य हैं वे जो अपने कर्त्तव्य कार्यों को करते
हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं, विशेषतः जो पुरुष अपने
देश की कल्याण-कामना से अपने स्वार्थ पर लात मार कर कर्त्तव्य
कार्य करते हैं।

एक बार स्पेन वालों की पुर्तगाल वालों से लड़ाई हुई। स्पे-
न में मूर्नासीनक नामक एक पुरुष रोगग्रस्त था। उसने खाट पर प-
ड़े सोचा कि मुझे मरना तो पड़ेगा ही फिर खाट पर पड़ा प-
ड़ा क्या मरूँ। स्पेन के प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने दे-
श की रक्षा के लिये युद्ध करे। फिर मैं भी रणभूमि में जा कर शरी-
र क्यों न त्यागूँ ऐसा सोच समझ कर वह युद्धस्थल में गया और व-

ख़ूब लड़ा। लड़ते लड़ते ही उसने अपना शरीर त्यागा। उसका नाशवान् शरीर छुट गया, किन्तु वह आज लों स्पेन वालों को कर्त्तव्य-निष्ठा का उपदेश दे रहा है। रुग्नावस्था में भी लड़ने का फल यह हुआ था कि स्पेन वाले उत्साहित हो ख़ूब लड़े थे। इस प्रकार हम भी उसी रोगी के समान हैं, जिसकी मृत्यु निश्चित थी। मरना तो पड़े ही गा फिर क्यों न हम कर्त्तव्य करते हुए आनन्द से मृत्यु की गोद में जा बैठें।

मृत्यु का भय कायरों और कर्त्तव्य-ज्ञानशून्य मनुष्यों को सताया करता है। कर्त्तव्यनिष्ठ पुरुष मृत्यु की तिल भर भी परवाह नहीं करते। वे मृत्यु को, आत्मा के लिये एक शरीर छोड़ कर दूसरे शरीर में जाना मात्र समझते हैं। जिन लोगों ने गुरु गोविंद सिंह और सुकरात आदि धार्मिक पुरुषों के जीवन-चरित्र पढ़े हैं वे इस बात को भली भांति जानते हैं। जब यह बात है तो कर्त्तव्य-पालन में मृत्यु का क्या भय? भय तो अधर्म और अपकीर्ति का करना चाहिये न कि जीवन को सार्थक करने वाले कार्यों का। कर्त्तव्य पालन में चाहे जितने दुःख उठाने पड़ें, परन्तु कर्त्तव्य से विचलित न हो कर जो पुरुषार्थ से काम लेता है, पुरुष वही है। चरित्रवान् पुरुष के चरित्र और नाम पर कर्त्तव्य कार्यों को करने के कारण, बन्दीगृह में जाने पर भी कलङ्क नहीं लगता। कर्त्तव्यतत्पर पुरुष के लिये बन्दीगृह भी कीर्ति-लाभ करने का साधन बन जाता है। ऐसे पुरुष कहीं भी रहें उनका गौरव है और कीर्ति तो मरने पर भी उनका पीछा नहीं छोड़ती। उनके मर जाने पर भी उनके सत्कार्यों के कारण उनका नाम अमर हो जाता है। साहित्य और इतिहास पुराने समय के एक अनेक महान पुरुषों के नाम और काम आज तक बखान रहे हैं।

लोग, अनर्थ-कारी कार्यों में रात दिन लगे रहते हैं और उनमें लिप्त रहने के लिये अनेक प्रयत्न करते हैं, परन्तु अच्छे काम करने का अवसर बहुत कम प्राप्त होता है। कर्त्तव्य-पालन से कभी जी न चुराना चाहिये। कर्त्तव्य-पालन के पीछे ही सुख और आनन्द प्राप्त होता है। सफलता की प्राप्ति में यदि विलंब हो तो भी घबड़ाना न चाहिये और यदि सफलता शीघ्र ही प्राप्त हो जाय तो फूल कर कुप्पा भी न हो जाना चाहिये। धैर्य पूर्वक कार्य करने ही से संसार में सफलता बहुधा प्राप्त हुआ करती है।

कर्त्तव्य-पालन करते समय धैर्य को कभी न छोड़ना चाहिये। धैर्य ही सफलता का सखा और सहायक है। श्रीरामचन्द्र, हरिश्चन्द्र और युधिष्ठिर आदि अनेक कर्त्तव्यनिष्ठों पर बड़ी बड़ी विपत्तियाँ आईं, परन्तु धैर्य के बल से उन सब से छूट गये। उनके उस समय के कार्य हमारे जीवन के लिये पथप्रदर्शक हैं।

महारानी एलिज़ेबेथ से पहिले इँगलेंड में प्रोटेस्टेंट पादरियों पर बड़ा अत्याचार किया जाता था। कितने ही पादरी जीते जला दिये गये थे। दो पादरी जब आग में जलाये जा रहे थे तब एक ने दूसरे से कहा था—"भैया रिडलो! आनन्द पूर्वक मनुष्य-कर्त्तव्य का पालन करो। आज हम ऐसी बत्ती जला रहे हैं जो, यदि ईश्वर की कृपा हुई तो, इँगलेंड में कभी न बुझेगा। सचमुच उसका यह कथन अक्षर अक्षर सत्य निकला। इन दोनों ने जो बत्ती जलाई वह आज तक जल रही है।

सत्य है कर्त्तव्य-पालन ही मनुष्य का सच्चा आनन्द और [illegible] का हेतु होता है। अतएव प्रत्येक मनुष्य को दृढ़ता पूर्वक [illegible] के पालन में सदा संलग्न रहना चाहिये।

६—मालाबार में नागपूजा

भारत के मालाबार अञ्चल में नागपूजा कैसे प्रादुर्भूत हुई, इसका दिनों दिन कैसे विस्तार हुआ यह केवल धार्मिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि ऐतिहासिक तथा अन्य देशीय दृष्टि से भी महत्त्व का विषय है। कुछ विद्वान् नागपूजा का सम्बन्ध शिवपूजा से बताते हैं और कुछ सूर्यपूजा से। अर्थात् इन देवताओं से नागपूजा निकली है। प्रत्येक देश में चाहे यथार्थ में नागपूजा वहाँ न हो पर उसके इतिहास में इसकी बातें अवश्य पायी जाती हैं। नागपूजा अमेरिका के गँवार आदिम निवासियों से ले कर उच्च सभ्यता वाले हिन्दुओं तक में पाई जाती है। चलडियंस, मिश्री, यूनानी, रोमन, यहूदी, ईरानी तथा प्राचीन ईसाई भी सापों को मानव बुद्धि से परे अर्थात् देवता समझते थे।

ईसाई धर्म के फैलने के बाद भी शाम और एशिया के कुछ पश्चिमीय भागों में सूर्य और नागपूजा के अवतरण पाये गये। नौस्टिक अपने कर्मकाण्डों में नागपूजा का केवल वर्णन ही नहीं करते थे बल्कि उनमें से कुछ वास्तव में सर्पों की पूजा भी किया करते थे। मनोनियन नाग को उपकारी एजेंट समझते थे। मेजर ओल्डहम का अनुमान है कि सेंटजार्ज तथा ड्रैगन की कथा एक प्राचीन उपाख्यान से निकली है, यद्यपि वर्त्तमान समय में ईसाइयों ने इसका रूप इस प्रकार बदल दिया है।

अमेरिका के आदिम निवासी नागों के निमित्त मन्दिर बनवाते थे। [illegible] की कुछ अन्य जातियों ने अपनी उत्पत्ति एक [illegible] है। नागों के गुणों के विषय में [illegible] है।

नाग [illegible] में अधिक बुद्धिमान है। बिना [illegible] के चारों ओर [illegible] माना और [illegible]

जानवर हो, पर इस पर भी अपना स्वाभाविक दोष रखना, ऐसा कि काटने पर मनुष्य तुरन्त मर जाय, पर खूबी यह कि ज़रा भी उसका अङ्ग भङ्ग न हो, न रक्त बहे न ज़खम हो; अर्थात् मालूम होने वाली किसी प्रकार की यन्त्रणा न हो, इस प्रकार मानों सर्प ने मनुष्य की आत्मा खींच कर अपनी आत्मा में मिला ली। ये सब ऐसी घटनाएँ हैं जिनसे मनुष्य के हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।"

फिर फ़्राडड कहता है—

"प्राच्य देशों में नाग ज्ञान तथा अमरत्व की खान समझा जाता है। पूँछ मुख में डाले हुए नाग (ईरानी धर्मशास्त्र में) अनन्त काल का मण्डल माना जाता है। साँप प्रति वर्ष अपना केंचुल छोड़ता है, इसलिये वह मर कर फिर जीवित हुआ और अमर माना जाता है।"

प्राचीन काल में इतनी जातियाँ जब इनकी सभ्यता परिपक्व नहीं थी, नाग को अलौकिक अर्थात् देवतुल्य क्यों मानती थीं इसका यही कारण है। यह ध्यान देने की बात है कि अनेक सम्प्रदाय नागों की पूजा करते थे पर ईसाइयों ने साँप को ईश्वर का प्रधान शत्रु बताया है। कहा है साँप में शैतान घुसा हुआ है।

जानवर हो, पर इस पर भी अपना स्वाभाविक रोष रखना, ऐसा कि काटने पर मनुष्य तुरन्त मर जाय, पर ख़ूबी यह कि ज़रा भी उसका अङ्ग भङ्ग न हो, न रक्त बहे न ज़ख़म हो, अर्थात् मालूम होने वाली किसी प्रकार की यन्त्रणा न हो, इस प्रकार मानों सर्प ने मनुष्य की आत्मा खींच कर अपनी आत्मा में मिला ली। ये सब ऐसी घटनायें हैं जिनसे मनुष्य के हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।"

फिर फ्रेज़र कहता है—

"प्राच्य देशों में नाग ज्ञान तथा अमरत्व की खान समझा जाता है। पूँछ मुख में डाले हुए नाग (ईरानी धर्मशास्त्र में) अनन्त काल का मण्डल माना जाता है। सांप प्रति वर्ष अपना केंचुल छोड़ता है, इसलिये वह मर कर फिर जीवित हुआ और अमर माना जाता है।"

प्राचीन काल में इतनी जातियाँ जब उनकी सभ्यता परिपक्व नहीं थी, नाग को अलौकिक अर्थात् देवतुल्य क्यों मानती थीं, इसका यही कारण है। यह ध्यान देने की बात है कि अनेक सम्प्रदाय नागों की पूजा करते थे पर ईसाइयों ने सांप को ईश्वर का प्रधान शत्रु बनाया है। कहा है सांप में शैतान घुसा हुआ है। शैतान ने सांप का ही वेष बना कर यह पाप करने के लिये मानव जाति की माता को फुसलाया, जिससे संसार में मनुष्यों के लिये मृत्यु आई और मानव जाति में पैदा हुआ पैदा।

शैतान सांप का अति मनोहर रूप धारण कर के ईश्वर के बाग पहुँचा और हव्वे को फुसलाया जिससे मनुष्य की प्रथम अवज्ञा का आरम्भ हुआ। ईसाई धर्मशास्त्र में तो लिखा है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] लिखा है कि यह [illegible] [illegible] दिया गया। इसके बाद हिन्दू धर्मशास्त्र

की कथा की भी तुलना की जा सकती है। श्रीकृष्णचन्द्र महाराज ने इस प्रकार महा बलवान दुष्ट नागराज कालिय का दमन कर उसके सिर पर नाच कर के चरणों से उसका मस्तक कुचल दिया जिससे उसके मुख से रक्त की धारा निकल चली थी। हिन्दू तथा ईसाई दोनों धर्म साँपों को दण्ड्य बताते हैं।

हिन्दू शास्त्र में नागों का बड़ा उच्च स्थान है। विष्णु भगवान् शेष नाग पर शयन करते हैं जिसके सहस्र सिर और सहस्र जिह्वाएँ हैं। यह शेष नाग ज्ञान के आगार समझे जाते हैं। शिव जी गले में सर्प भूषण की तरह लपेटे रहते हैं। सारांश, ये दोनों देवता नागों से प्रसन्न रहते हैं। ट्रावनकोर राज्य में अम्बलोमजी का कृष्णमन्दिर उसी प्रकार नागों का स्थान माना गया है जिस प्रकार न्यकोम में शिवमन्दिर। श्रावण सुदी पञ्चमी जिसे "नाग पञ्चमी" कहते हैं, हिन्दुओं के लिये अति पवित्र दिन है। इस दिन नाग की पूजा होती है। पद्म और गरुड़ पुराणों में ऐसे नागों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। महाभारत में कद्रू, विनता और उनकी सन्तान की जो कथा लिखी है उसके देखने से पता चलता है कि प्राचीन काल में आर्य लोग नागों में बड़ी भक्ति रखते थे

मेजर ओल्डहम कहते हैं कि "नागों का सूर्य से बड़ा भारी सम्बन्ध है। इसी कारण इनका सूर्य जैसा आदर होता और इन्हें सनातन हिन्दू-धर्म-शास्त्र में इन नागों को स्थान मिला है।" आपका कहना है कि "फणधारी नाग उन पुरुषों को कहा गया है जो सूर्यवंश से उत्पन्न हुए थे और स्वर्ग के नागदेवता जिनका वर्णन शतपथब्राह्मण में हुआ है, सूर्यवंश के शिरोमणि थे।" मेजर ओल्डहम यह भी बताते हैं कि ऋग्वेद में जिन असुरों और सर्पों का वर्णन हुआ है तथा मनुस्मृति और महाभारत में जिन असुरों और नागों की कथा लिखी है, वे सब वास्तव में असुर (राक्षस) और सर्प नहीं थे, बल्कि मनुष्य की वे जातियाँ थीं जिन्होंने रुकावट डाल कर आर्यों के आक्रमण में बाधा दी थी। ये असुर, दस्यु और नाग जिनसे आर्यों की मुठभेड़ हुई थी, जंगली मनुष्य नहीं थे, बल्कि सभ्य पुरुष थे जिनके बड़े बड़े पत्थर के गढ़ थे उनका एक प्रधान नगर "पाताल" था। यह उस अञ्चल की राजधानी थी जिसका नाम भी यही था। यह स्थान वृत्र—महान् असुर—में सम्मिलन विदित होता है। मेजर ओल्डहम कहते हैं, असुर प्रायः द्रविड़ों को कहा गया है जिनमें से कुछ ने बहुत पहले दक्षिण भारत में निवास किया था। इतिहासवेत्ताओं का कथन है कि दक्षिण भारत में सभ्यता का सब से पहले प्रचार द्रविड़ों में हुआ था और ये उत्तर भारत ही से दक्षिण गये थे। फिर उनका यह अनुमान है कि जब आर्यों ने भारत विजय किया, तब इन्हें निकाल बाहर किया। सुप्रसिद्ध लेखक डा० काल्डवेल का प्रश्न है कि "क्या द्राविड़ों को ही दस्यु कहा गया है जिन्होंने आर्यों के आक्रमण में रुकावट डाली थी पर सफल नहीं होने पर उनके भृत्य और आश्रित हो गये?" मेजर ओल्डहम कहते हैं कि आर्यों ने भारत पर विजय पा कर असुरों को दास बनाया यह बात ठीक नहीं है।

नागों ने बार बार उन पर भयङ्कर आक्रमण किया जिसको सहन नहीं कर सके। उक्त ग्रन्थ से यह भी पता चलता है कराज कुछ समय तक नाग धम्मरों—सर्पों—के अधिकार शान्ति पूर्वक रहा। विष्णु के अवतार परशुराम जी नागों को परा नहीं कर सके, इसलिये उन्होंने नागों से समझौता किया जिस अनुसार उन्हें ब्रह्मस्थम् स्थान दिया और ब्राह्मणों को आज्ञा दी तुम लोग इन नागों का आदर कर स्वलदेव या भारदेवता तरह इनको मानो। ब्राह्मणों से यह भी कहा गया कि बलि अ पूजा से इन्हें प्रसन्न करो। कहा जाता है नाग ऐसी बलि और पू पा कर प्रसन्न हो गये।

द्रविड़ नागों तथा आर्य विजेताओं में जो घोर संग्राम हुआ उसीको यह कथा बताती है। इसमें कोई कुछ सन्देह नहीं सकता। द्रविड़ "पाताल" से भारत आये थे यह पहले भी क जा चुका है।

मेजर ओल्डहम बताते हैं कि १० वीं और ११ वीं शताब्दी शिला-लेखों से पता चलता है कि दक्षिण-पश्चिम भारत के एक प्रमुख पुरुष नागों से उत्पन्न हुए हैं, क्योंकि वे ऐसा दावा क हैं। उनकी ध्वजा में नागों के चित्र बने रहते हैं। इस कारण भोगवती के अधिपति कहलाते हैं। शिलालेखों में कनारा के प भाग का नाम नागखण्ड लिखा है अर्थात् नागों की भूमि।

नज-पम्पू—नेकमिज्राजे फणधारी सर्पों की पूजा भारत दक्षिण में उसी प्रकार होती है जिस प्रकार उत्तर में द्रविड़ों में प्रोषित सर्पों तथा उनकी मूर्तियों को जो बलि चढ़ाई जाती इसमें दूध आटा फल और अन्न रहता है जो वास्तव में सर्पों नहीं मनुष्यों का खाद्य है। पितरों की तरह सर्पों को भी पुष्प अ चढ़ाये जाते हैं। यदि नाग मारा जाय तो मनुष्य की त

उसका दाह और क्रिया की जाती है। कहते हैं कि जिन सर्पों ने ब्राह्मणों को मालाबार से निकाल बाहर किया था, उनके मुख मनुष्य जैसे थे। मालाबार में सर्पों की पूजा कुञ्जों या वनकुञ्जों में होती है। यहाँ भी मलाबार की तरह कुञ्ज या उपवन के पेड़ एवं झाड़ियाँ कुल्हाड़ों से काटी नहीं जातीं। ट्रावनकोर में नागपूजा कराने वालों में जो प्रधान व्यक्ति हैं उनके नाम के आगे नाग का नाम लगा रहता है। इस तरह से "मन्नारस्साल नाग पिषाड़ी कहलाते हैं। पाताल के नागराज वासुकी के नाम से इसका बड़ा सम्बन्ध है। उत्तर भारत में नाग लोगों के जो अधिपति थे उनको ही वासुकी कहा गया है। मालाबार में नागों का प्रदेश नागलोक या पाताल कहलाता था। ये नाग आर्यों से लड़ते थे। ब्राह्मणों के मन्दिरों में नागपूजा संस्कृत श्लोकों द्वारा होती है। अन्य मन्दिरों में द्रविड़ भाषा में ट्रावनकोर राज्य के नगर कायल तथा मन्नारसाल में यही बात पायी जाती है।

दक्षिण भारत के द्रविड़ प्राचीन काल ही से चेरा, चोला तथा पंड्या इन तीन सम्प्रदायों में विभक्त होते आये हैं। चेराद्रविड़ भाषा में नाग को ही कहते हैं। अतः चेरा मण्डल का अर्थ नागमण्डल ही है। नागद्वीप भी नागों के देश को कहा गया है। इससे स्पष्ट मालूम हो जाता है कि दक्षिण भारत के द्रविड़ असुरों से उत्पन्न हुए हैं। ७१ इस समय भी गञ्जर के आस पास एक ऐसी जाति बसती है जो अपने को चेरा या सियोरिश कहती और अपनी उत्पत्ति नागदेव से बताती है। ये चेरा एक अति प्राचीन जाति है। इसमें सन्देह नहीं कि ये लोग द्रविड़ चेराओं के कुटुम्बी हैं। इनमें कुछ ऐसा निशान रीति रस्म है जिनसे इनका सम्बन्ध नेपाल के नेवारों से मालूम होता है। इसी प्रकार नेपाल के नेवारों की भी बहुत सी रहन सहन मालाबार के नैयरों में पाई जाती है। नेवारा नैयरा

में और भी कई एक तरह की समान बातें पायी जाती हैं जैसे रण धीरता, भवन निर्माण विद्या इत्यादि।

मेजर श्रोल्डहम कहते हैं कि कंसया में कर्नल टाड ने एक शिला लेख देखा था उसमें सार्य वंश के सालिन्द्र नामक एक राजा का उल्लेख था। यह राजा तक्ष्य के शासक कहलाते थे। यह तक्ष्य स्थान पञ्जाब में है जो "तक्षशिला" नाम से प्रसिद्ध है। चीनी यात्री ह्यासाङ्ग यहाँ गया था। तक्ष्य के नाग लोग सार्य नाम से भी पुकारे जाते थे। सतलज तथा व्यास के बीच हिमालय के बाहर एक अञ्चल है। यहाँ विशेष कर नाग देवताओं ही की पूजा होती है। अपर चेनाब तट पर भी सिउराज नाम का एक स्थान है। यहाँ भी नाग पूजक ही लोग रहते हैं। यह सराज यह सिउराज कर्नल टाड के सार्य का ही विकल्प है। मेजर ओल्डहम फिर बताते हैं कि गङ्गा के अञ्चल में रहने वाले चेराओं का यह दूसरा नाम है। उक्त शब्द सराट का भी पर्याय हो सकता है। पुरानी तामील भाषा में नाग या चेरा को "सराइ" ही कहते हैं। इसलिये सराज के सतलज तटवासी, सिउरीज या चेरज, सराज या करा-जाल आदि सब नागपूजक एक ही वंश की भिन्न भिन्न शाखायें हैं। डा० काडवेल तथा रेव० मि० फॉकस चेरा और केराला इन दोनों शब्दों को एक ही पर्यायवाचक बताते हैं। तामिल और मलायल भाषाओं में इनसे एक ही मानें निकलता है। डा० गुंडर्ट का कहना है कि "केरालम" उस चेरा देश का नाम है जो गोक-र्णम और कुमारी के बीच है। मेजर ओल्डहम बताते हैं कि हिमालय के कोड़ा तथा दक्षिण भारत के कोड़ा चेरा और केरलों में बड़ी समानता पायी जाती है। हिमालय के 'कोड़ो' के अर्थ भी ये ही हैं। और फिर एक एक परिणाम न निकाल कर बताते हैं कि केवल समानता से ही हम कोई बात नहीं मान लेनी चाहिये।

वे केरा आदि सूर्यवंश के बताये गये हैं, इससे हम इन्हें एक मानते हैं। इनके अतिरिक्त ये फणधारी नागों का सदा आदर और उनकी पूजा करते हैं।

मेजर फोर्लांग भाषा की जाँच कर फिर कहते हैं कि दक्षिण भारत के द्रविड़ उसी वंश के हैं जिसके उत्तर भारत के असुर या नाग थे। हाल में कुछ इतिहासकारों ने नैयरों की उत्पत्ति नागवंश से भी बताई है। कितने ही महाशयों का यह भी कहना है कि आजकल के नैयर, नागों के वंशज नहीं, बल्कि उनके प्रतिनिधि हैं। "नैयर" "नागर" का रूपान्तर है, जो "नाग" शब्द का बहुवचन है। यह भी कहा जाता है कि मालाबार के ब्राह्मण तथा नैयर (शूद्र) एक ही सीथियन वंश से उत्पन्न हुए हैं।

डा० काल्डवेल कहते हैं, कि उत्तर भारत की मातृभाषाओं में संस्कृत व्याकरण की शृङ्खला पाई जाती है, पर यह प्रधानतः शाक-द्वीपीय है; इसमें संस्कृत के बहुत से शब्द पीछे से जोड़े गये हैं। असुरों के आर्यों के साथ मिल जाने से बहुत पहले नागों ने उत्तर भारत छोड़ा होगा। इसीसे द्रविड़ भाषा में शाकों या तुरानियों के बहुत शब्द पाये जाते हैं। उत्तर भारत की भाषाओं में इतने विदेशी शब्द नहीं पाये जाते। जब से दक्षिण भारत को आर्यों ने जीता तब से द्रविड़ भाषा को संस्कृत से सजा कर बहुत उन्नत बनाने की चेष्टा की गई है इससे आज वहाँ के निवासी बड़े गौरवान्वित हो सकते हैं।

उक्त विषय पर ध्यान देने से पता चलता है कि भारत के जिन जिन भागों में नागों की विशेष पूजा होती है वहाँ के कुछ निवासियों से दक्षिण भारत के नागपूजकों से कोई अज्ञात प्राचीन सम्बन्ध है। अनेक विद्वानों की यह धारणा भी असङ्गत नहीं हो

सकती कि आर्य विजेता द्रविड़ों को अपने हिन्दू सम्प्रदाय में मि
कर अपनी शक्ति बढ़ाने को बड़े चिन्तित थे, इसीसे उन्होंने उन
नाग देवताओं को अपने हिन्दू शास्त्रों में स्थान दिया।

—के० पी० पद्मनाभ मेनन

७-बिजली-युग की करामात

पहले ऐसा समझा गया था कि बिजली की लहर किसी स्
साधन बिना एक जगह से दूसरी जगह नहीं दौड़ सकती। इ
लिये तार का उपयोग किया गया। तार घर में तार बाबू ता
यन्त्र पर जो खट खट करते हैं, वह खम्भों पर तने हुए तार प
दौड़ती हुई बिजली की लहर द्वारा दूसरे स्थान के तार-यन्त्र
पहुँच कर सुन पड़ती है। परन्तु प्रायः पन्द्रह बीस वर्ष पूर्व वै
निकों ने मालूम किया कि बिजली जो वायुमण्डल में सदा मौज
रहती है, उसीके द्वारा हम अपनी आवाज़ जहाँ चाहें वहाँ भेज सक
हैं, तार के साधन की कुछ ज़रूरत नहीं। अब हम किसी तालाब
में पत्थर फेंकते हैं, तो जल में जिस जगह पत्थर गिरता है, ठी
वहीं से गोलाकार लहरें एक के बाद एक, चक्र के अन्दर चक
कर में पैदा हो कर क्रम से तालाब में कुछ दूर फैल कर मिट जा
हैं। ठीक यही बात वायुमण्डल में होती है। जब कुछ भी श
की टक्कर उसमें लगती है तो ठीक पानी की गोलाकार
चक्र के अन्दर चक्र के रूप में पैदा होती हैं और वायु में
बिजली की लहरों द्वारा दूर दूर तक जाती हैं।

इस सिद्धान्त के मालूम होने ही मारकोनी नाम के एक का
गर ने तार खबर भेजने के यन्त्र की भाँति एक ऐसा यन्त्र

कि जिसके द्वारा समाचार तार के साधन बिना भेजा जा सके। इन्होंने बेतार-लहर-यन्त्र बनाये हैं। अब तो इस यन्त्र और इस सिद्धान्त ने और भी तरक्की की है। टेलीफोन एक यन्त्र है जिसके द्वारा मनुष्य की आवाज़ तार के साधन से दूर तक सुनी जा सकती है। अब इसमें भी तार की कुछ ज़रूरत न रही। बेतार-टेलीफोन-यन्त्र अब ख़ूब उन्नति पर है। इसके द्वारा आप घर बैठे हज़ारों मील दूर से बोलते हुए आदमी की आवाज़ साफ़ सुन सकते हैं और स्वयं बात कर सकते हैं। इंगलैंड अमेरिका आदि देशों में अब इसका ख़ूब प्रचार हो गया है। लोग घर बैठे दूर दूर के नगरों के थियेटरों के गाने, व्याख्याताओं के व्याख्यान, और समाचार सुना करते हैं। यहाँ तक कि रात को सोते समय इसके द्वारा बच्चों को कहानियाँ भी सुनाई जाती हैं। अब एक और करामात यह हुई है कि बेतार की बिजली की लहर के द्वारा आपकी शक्ल भी सैकड़ों हज़ारों कोस दूर बैठा आदमी देख सकता है। जैसे फोटो में आपकी तसवीर खिंच जाती है, वैसे ही इस विद्युत-यन्त्र द्वारा भी हज़ारों कोस दूर बैठे हुए आदमी के सामने तसवीर खिंच कर प्रगट होती है। उस दिन विलायत के "डेलीमेल" पत्र ने घोषित किया कि बेतार-यन्त्र द्वारा जो कोई सब से अच्छी तसवीर बहुत दूर तक भेज सकेगा उसे इनाम दिया जायगा। यह तसवीर शायद अमेरिका से (प्रायः ४ हजार मील दूर से) उक्त बिजली-यन्त्र द्वारा भेजा [illegible] और लन्दन में यह बहुत कुछ स्पष्ट [illegible] टाइम्स आव इंडिया" पत्र के साथ [illegible] पत्र [illegible] में यह चित्र [illegible] हुआ है। इसमें भी इसे देखा। [illegible] है [illegible] आदमी की शकल [illegible] पहचान सकते हैं

बिजली की लहरों के साधन से अभी तक जितने आविष्कार हुए हैं, वे अवश्य ही बड़े महत्व पूर्ण हैं और आगे चल कर मनुष्य के अनेकानेक कामों में आद्योपान्त कायापलट कर देंगे। परन्तु इनके अतिरिक्त और जिस जिस प्रकार से विद्युत-शक्ति के द्वारा "बेतार" यन्त्र का उपयोग हो सकता है, उसका अभी अनुमान करना भी कठिन है। फिर भी यह निश्चयरूप से कहा जा सकता है, कि अधिक नहीं १०—२० वर्ष के अन्दर ही इस यन्त्र के प्रयोग से मनुष्य के रहन-सहन, नित्य नैमित्तिक कार्यादि की एकदम काया पलट हो जायगी। कितने ही नये प्रयोग तो आज-कल ही में होने वाले हैं। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं:—

समाचारपत्र—ताज़े समाचार, समाचारपत्र या संवाददाता कम्पनी के आफ़िस में आते ही पाठकों के पास पहुँच जायँगे। समाचारपत्र कार्यालय में और सब पाठकों के घरों में "बेतार-टेलीफोन-यन्त्र" रखे रहेंगे। इन्हींके द्वारा नित्य एक निश्चित समय, या सबेरे से रात को सोने के समय तक कई बार समाचार प्राप्त होंगे। सबेरे उठ कर अखबार पढ़ें नहीं, बल्कि सुने जायँगे। आप कुर्सी पर पाँव पसार कर बैठ गये। पास ही एक तिपाई पर बेतार-यन्त्र रख लिया और उसका फोनोग्राफ़ का सा चोंगा अपनी तरफ़ फेर लिया। बस; अब सुनिये अपने अखबार के ताज़े समाचार, लेख, टीका टिप्पणी इत्यादि। एक बड़ी भारी त्रुटि अभी इस यन्त्र में यह है कि यदि हम चाहें, कि हमारा समाचार अकेले आपको ही मिले दूसरे लोग उसे न सुन सकें तो अभी ऐसा नहीं हो सकता। हमारा भेजा हुआ समाचार आपके यन्त्र तक ले जाने वाली विद्युत तरङ्ग के रास्ते में जिस जिसके पास बेतार यन्त्र होंगे वे सब अपने अपने यन्त्र द्वारा उस समाचार को सुन सकेंगे। यह त्रुटि दूर करने का उपाय सोचा जा रहा है।

विज्ञापनबाज़ी—एक छोटा वायुयान जिस पर कोई आदमी सवार नहीं होगा, आसमान में उड़ा दिया जायगा। उसे आप अपने घर की छत पर खड़े हुए बिजली की लहर द्वारा पतंग की तरह उड़ा सकते और जिधर तथा जितनी दूर तक चाहें ले जा सकते हैं और जब चाहें नीचे उतार सकते हैं। विज्ञापन का प्रचार ऐसे वायुयान द्वारा रात को खूब हो सकता है। रोशनी के बड़े बड़े अक्षरों में लिखी हुई बत्तियाँ वायुयान के नीचे दाहने बायें और आगे पीछे लटका दी जा सकती हैं। यह चमकते हुए विज्ञापन सारे शहर में रात भर उड़ाये जा सकते हैं। छतों पर सोये हुए लोग रात को जब आँखें खोलेंगे, किसी न किसी का विज्ञापन ज़रूर उनको आकाश में उड़ता दिखेगा। समाचारपत्रादि के छोड़-पत्र और विज्ञापन का किसी की निगाह से चूक जाना सम्भव है, परन्तु इन आकाशी विज्ञापन तो सब को पढ़ने ही पड़ेंगे। नहीं पढ़ना चाहो तो आँखें बन्द किये पलँग पर पड़े रहो। नहीं तो छत पर सोना छोड़ दो। कहिये, कैसा मज़ा है!

[illegible]
[illegible] परन्तु [illegible]
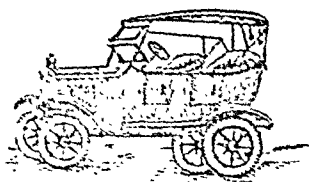
साधन से पहुँचती है। आगे से बेतार द्वारा; अर्थात् बिजली अदृष्ट लहरें इन्हें चलायेंगी।

चिट्ठियाँ—डाक से भेजने की कोई ज़रूरत नहीं। "टाइपराइटर मेशीन" अर्थात् अक्षर छाप कर "लिखने" वाली मेशीन में बेतार यन्त्र लगा रहेगा। चिट्ठी भेजने वाले के पास भी ऐसी ही मेशीन और यन्त्र रहेगा। वह अपनी चिट्ठी लिखने वाली मेशीन में चिट्ठी छापेगा जो वह आपको भेजना चाहता है। जो जो अक्षर क्रम से वह अपनी मेशीन में दबायेगा वही अक्षर उसी क्रम "बेतार" द्वारा सैकड़ों कोस दूर रखी हुई आपकी टाइपराइटर मेशीन में छपते जायँगे। ऐसा होने से पोस्टमैन का मदा के अन्त हो जायगा।

भारी सुभीता—"बेतार यन्त्र" छड़ी, हाथ में या कोट आस्तीन में लगा लीजिये। आप चाहे कहीं भी हों, इस द्वारा दूर दूर के लोगों से बात कर सकते हैं। शर्त यही है कि पास भी ऐसा यन्त्र हो।

डाक्टर—रोगी को डाक्टर के घर जाने की ज़रूरत अपना सारा हाल इस यन्त्र द्वारा डाक्टर से कह दो। वह भी यन्त्र द्वारा आपकी नाड़ी देख लेंगे और आपकी टाइप मेशीन में नुसखा भी छाप देंगे। आप 'बेतार' द्वारा भी नुसखा की दवा तैयार करवाले क्योंकि वह इस यन्त्र द्वारा दवा के पास नहीं भेज सकता। सो आपको स्वयं ले आना या भेजनी पड़ेगी।

—

उद्यम पूर्वक अपना शौर्य, मान और पौरुष प्रकट कर। देख
यह तेरे कारण ही अधोगति को प्राप्त हो गया है। उसे फि
ऊपर को उठा। जिसके नाम को मनुष्य नहीं बखानते उसका
वृथा है।"

"दान, तपस्या, सत्य, विद्या और धनलाभ में जिसका
नहीं बखाना गया वह माता का (पुत्र नहीं) मल ही है।
में जिसकी निन्दा है, भोजन वस्त्र से भी जो हीन है, ऐसे
पा कर बान्धव लोग सुख नहीं पाते। हम लोग राज्य से नि
जा कर बिना जीविका के सम्पूर्ण सुखों से रहित, स्थानभ्रष्ट
हो कर मारे जायँगे। हे सञ्जय! वंश के नाशक, श्रेष्ठ पुरुषों में
निन्दित तुझ उत्साहहीन, पराक्रम रहित पुत्र को उत्पन्न कर, मुझे
बड़ा पश्चात्ताप है। मैंने पुत्र के स्वरूप में कुपात्र को उत्पन्न किया।
कोई स्त्री ऐसा पुत्र न जने। जो शक्ति को क्षमा करता है, अव
सर पर जिसको अमर्ष उत्पन्न नहीं होता, वह न स्त्री है और
न पुरुष। शक्ति का सन्तोष लक्ष्मी का नाशक है। हे पुत्र! अरे
पाप में गिरने से अपने को बचा और हृदय को लोहे का बना कर
अपना राज्य फिर प्राप्त कर, स्त्री के समान जीवन बिताना क्या
तुझे शोभा देगा? जो शूरवीर है, जिसका चित्त उदार है, जो
सिंह की भाँति विक्रम से विचरता है, वही सब का रक्षक बनता
है। उसीके राज्य में प्रजा को सुख प्राप्त होता है।"

इस पर सञ्जय कहने लगा—"हे माता! मेरे न रहने पर
सम्पूर्ण पृथ्वी, वस्त्र, आभूषण, भोग, ऐश्वर्य तथा जी कर क्या
सुख पाओगी?"

इसके उत्तर में विदुला बोली—"हे पुत्र! निन्दित लोकों में
हमारे शत्रु और श्रेष्ठ लोगों को हमारे मित्र लोग पावें। आनन्द
रहित पराश्रित हो कर जीवन बिताने वाले, कृपण लोगों की भी

का पालन न हो सकेगा। अतः अथाह दुःखसागर में हम डूबते हुओं को तू बचा। हम मरे हुओं को पुनः जीवित कर। तुम जैसा युवा, रूपवान्, विद्वान् तथा कुटुम्बवान् पुरुष भी, जिसका कि यश सर्वत्र विख्यात हो यदि बैल की तरह दूसरे का बोझ ढोवे तो मैं इसे तेरा हो मरण समझती हूँ। श्रेष्ठ पुरुष अपमान को मरण से भी बड़ा मरण समझते हैं। यदि मैं तुझे शत्रु के वश में, उसकी हाँ में हाँ मिलाने वाला, अथवा उसके पीछे चलने वाला देखूँ, तो मेरे मन को मजा क्योंकर शान्ति प्राप्त हो? तेरे कुल में ऐसा कोई उत्पन्न नहीं हुआ जो शत्रु का अनुयायी बन कर जीवित रहा हो। हे तात! पराया अनुचर बनना तुझे योग्य नहीं। मैं तो उस सनातन क्षात्र धर्म को जानती हूँ जिसकी प्रशंसा बड़े बड़े महापुरुष पहले कर चुके हैं और जिस धर्म को प्रजापति ने क्षत्रियों के लिये बनाया है।"

"क्षात्र धर्म का जानने वाला जो कोई भी क्षत्रिय इस जगत में आया है, वह अपनी क्षात्र वृत्ति को सम्यक विचार कर डर के कारण किसी को न झुके। उद्यम को कभी न छोड़े। उद्यम ही पुरुषत्व है। धर्म तथा ब्राह्मणों से सदैव नम्र रहे। दुष्टों को मारता रहे। कोई सहायक हो, या न हो, जब तक जीये तब तक इसी प्रकार करता रहे, यही क्षत्रियों का सनातन क्षात्र धर्म है।"

सञ्जय कहने लगा—"हे माता! तू बड़ा निर्दयी हो गई तूने अपना हृदय लोहे का कर लिया है कि जो परमात्मा की तरह तू मुझे युद्ध में नियुक्त करती है। तुझ जैसी विदुषा अपने इकलौते पुत्र से इस प्रकार के वचन कहे! अहह! यह क्या है। मैं उत्तर हूँ! मेरे न रहने पर राज्य आभूषण का भोग आदि की शान्ति क्या तुझे सुख देगी?"

कुछ लोग इस पर कह सकते हैं कि मिस्टर कारनेगी के धनाढ्यता को इतना अशान्ति-प्रद बतलाना केवल दिखावा मा है। किन्तु नहीं, इसमें बनावट कुछ भी नहीं है। सचमुच ये उनके मत उनके सच्चे हृदय का उद्गार है। सचमुच साहित्यानुशील को ये मनुष्य के लिये सब से बढ़ कर आनन्ददायक वस्तु समझ थे। यही कारण था कि ये पुस्तकावलोकन के सामने धनोपार्ज की हाय हाय को बुरा समझते थे। धन की निन्दा नहीं करते परन्तु उसकी अनुचित तृष्णा को ये अवश्य बुरा समझते थे। य बात एक इसी बात से प्रमाणित होती है कि मि० कारनेग पुस्तकालयों को कितने ही करोड़ रुपये दान कर गये। कारने इन महात्मा पुरुषों में थे जो "यथा वाणी तथा पाणिः" इ लोकोक्ति को चरितार्थ करने वाले हुआ करते हैं।

१०—मकान

पृथिवी मण्डल के भिन्न भिन्न भागों में मनुष्यों के रहने के मकान भी भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं। हमारे जैसे सभ्य मनुष्य पत्थर या ईंटों के बने हुए तरह तरह की आकृति वाले मकानों में रहा करते हैं [illegible] या ध्रुव के निकट के देशों में सब से अधिक सरदी पड़ती है [illegible] के अधिकांश भाग में [illegible] बर्फ की [illegible] से ढका पड़ा रहता है। वहाँ मकान बनाने के लिये मनुष्य [illegible] पत्थर एकत्र नहीं कर सकता। वहाँ वाले बर्फ के बड़े बड़े [illegible] को [illegible] कर उनको [illegible] रखने से घर बनाते हैं। [illegible] के टुकड़ों की [illegible] के [illegible] को चुन चुन कर कोठरियाँ बना कर ऊपर से [illegible] देते हैं। बस इतने ही से उस ठंड

ज़मीन के नीचे तहख़ाने बना कर उनमें रहते हैं। यदि वे
न करें तो मारे गर्मी के उनको जीना कठिन हो जाय।

ऐसी भी जातियाँ हैं जो कभी न तो घर ही बनाती और
एक जगह लगातार कहीं रहती हैं। अपने पशुओं और बाल ब
को साथ लिये हुए जन्म भर घूमा ही करती हैं। इनकी औरतें
पयोगी सारी सामग्री सदा इनके साथ रहती है। शीत-प्रध
देशों में गर्मी की ऋतु में पहाड़ी भूमि नयी नयी घास और पत्ति
से भर जाती है। उस समय ये परिव्राजक जाति भरे खेतों में
पशुओं को चरने के लिये छोड़ देते हैं। तब तक ये लोग
यहीं तंबू तान कर बने रहते हैं। जब चारा सूख जाता है
ये भी डेरा डंडा उठा यहाँ से चल देते हैं। फिर शीत ऋतु
प्रादुर्भाव होते ही ये पार्वत्य प्रदेशों को छोड़ कर समतल भूमि
उतर आते हैं। अमेरिका की पुरानी जातियाँ और अरब
तातार जाति के लोग इसी परिव्राजक जाति में से हैं।
भारत में भी कंजर जाति के लोग इन्हीं जातियों के मौसेरे
हैं। भेद है तो इतना ही कि कंजर लोग तंबुओं में न र
सिरकी तान कर रहते हैं।

चीन में कुछ लोग अपनी सारी उम्र पानी की सतह पर
कर ही व्यतीत कर डालते हैं। नावों ही में उनके जन्म और म
होते हैं। नावों पर ही वे पाले पोसे जाते हैं। इन्हें हम वरुण दे
की सन्तति कहें तो कह सकते हैं। नदियों के ...स्थल पर
लोगों की नावों से मुहल्ले के मुहल्ले बस जाते हैं और माँ बाप,
वंश कुटुम्बी नातेदार और अड़ोसी पड़ोसी सब ...मिल
कर सुख से नावों ही में रहते हैं। चीन और पूर्वी उपद्वीप
किसी किसी नदी में ऐसी ही नावों की बस्तियाँ देख पड़ती हैं।

एक एक बस्ती में दो दो तीन तीन सौ लोग रहते हैं। ये . . . बड़े शान्त स्वभाव के और थोड़े ही में सन्तुष्ट हो जाने वाले हैं। उनको पेट भरने के लिये स्थल पर आने की . . . पड़ती। मारकैबो झील में मछलियाँ और जलपक्षियों की . . . है। ये लोग इन्हींको मार मार कर खाया करते हैं। मारकैबो पर अनेक प्रकार के वृक्ष और भाँति भाँति की लताओं का एक . . . सा है। जहाँ झील की गहराई अधिक होती है, जलबस्तियों रहने वाले वहाँ पर गुहयाक नामक वृक्ष के बड़े बड़े तने, जो जैसे मज़बूत होते हैं, खंभे की तरह गाड़ देते हैं, और फिर उन रहने के घर बनाते हैं। एक बड़े आश्चर्य की बात यह है कि . . . याक के लट्ठे पानी में सड़ते नहीं प्रत्युत थोड़े ही दिनों में . . . जैसे हो जाते हैं। सो, खंभों के टूट या सड़ जाने का डर . . . रहता। मारकैबो झील के किनारे खून पीने वाले मच्छरों का भयङ्कर उपद्रव रहता है। इसी लिये वहाँ के मनुष्य यज . . . जल ही पर रहा करते हैं। रात को झील के भीतर से आप आप एक प्रकार का उजियाला निकला करता है। उस से जल-बस्तियाँ रात में भी दीप्तिमान रहा करती हैं।

उत्तरी अमेरिका के कालीफ़ोरनिया देश में जैसे भारी पेड़ देख पड़ते हैं, वैसे पेड़ पृथ्वी पर अन्यत्र देखने में नहीं आये। परन्तु अब सुना गया है कि पश्चिमी अफ़्रीका में सहारा . . . के दक्षिण में बाओबाब नाम का एक महा विशाल पेड़ होता है। उसके सामने कालीफ़ोरनिया के वृक्ष कुछ भी नहीं हैं। . . . वृक्ष ऊँचाई में ६५ हाथ से अधिक ऊँचा तो नहीं होता, . . . उसका आकार बड़ा विस्तारकर है। जहाँ पर यह वृक्ष होता है, वहाँ जान पड़ता है, मानो डाल पात आदि के साथ एक गोल हरा झब्बा है। इस वृक्ष के पत्तों से इसके फूल और भी . . .

दिल्ली पहुँचे तब औरंगज़ेब ने उन्हें रोक लिया और
दरबार में बुलाया। स्वर्गवासी यशवन्तसिंह के सरदार
बार में पहुँचे तब बादशाह ने उनसे राजकुमार अजित को
इतना ही नहीं, उन लोगों को उसने यह भी लालच
कि अगर वे राजकुमार को उसके हवाले कर देंगे, तो वह
मारवाड़ उनमें विभाजित कर देगा। किन्तु वीर
भक्त बादशाह के प्रलोभनों में क्यों फँसने लगे, प्रत्युत वे
की बातचीत सुन कर क्रुद्ध हुए और दरबार छोड़ अपने डेरों पर
आए। डेरे पर पहुँचते ही सब से पहिले उन्होंने
को एक विश्वस्त मनुष्य के हवाले किया। इतने में मुग़लों
शिविर को चारों ओर से घेर लिया। राजपूत सरदार
के इस कपट व्यवहार से क्रोधोन्मत्त हो कर समयोचित
की तैयारी करने में अग्रसर हुए। एक स्थान पर बहुत सी क
आर काठ किवाड़ इकट्ठा किया गया, और उन पर अपनी स्त्रि
को बैठा बाहर में बत्ती लगाई। हज़ारों तोपें एक साथ छूटने
आवाज़ हुई। सब राजपूत बालाएँ एक साथ स्वर्गवासिनी हु
स्त्रियों की ओर से और राजकुमार अजित की ओर से निश्चिन्त
सब सरदारगण शत्रु दल का स्वागत करने के लिये, कमर कस
तैयार हुए। आशकरण के पुत्र वीरवर दुर्गादास ने कहा "मि
के मान को [illegible] हिन्दुस्तान के लिये
[illegible] है [illegible]
[illegible] निकला हूँ
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] है और [illegible] है।

उनकी जान लेने में कोई बात उठा न रखेगा। अतएव को ले कर 'आबू' पर्वत पर चले गये, और वहां वेष रहने लगे। दुर्गादास बड़ी सावधानी से रहते और अजित भाग्यों के समान रक्षा किया करते थे। इतना करने पर भी वाड़ियों से यह भेद बहुत दिनों तक छिपा न रह सका। देखने सहस्रों राठौड़ वीर अपने भावी राजा के दर्शन के लिये मारवाड़ से रवाना हुए और अन्त में ढूँढ़ कर का पता लगा ही तो लिया। अजित को पा कर राठौड़ों के की सीमा न रही। इस शुभ संवाद के फैलते ही पास जोधपुर दरबार के सामन्त और चारण भी आ इतने में समाचार आया कि राव अमर सिंह के पुत्र और राजपूतों ने जोधपुर पर चढ़ाई की है। जिसमें अमरसिंह के को तो स्वयं औरंगज़ेब ने सहायता दी है। यह सुन कर सब ने तलवारें म्यान से निकाल लीं। ये वीर ठीक समय पर स्थान पर पहुँचे और अमरसिंह के पुत्र और परिहारों को पर कर जोधपुर पर अधिकार जमा लिया। औरंगज़ेब ने यह सुना। अभी तक वह अन्य अन्य उपायों से अभीष्ट सिद्ध चाहता था। किन्तु अब उसे प्रत्यक्षतः सामने होना पड़ा। वह धाम से मारवाड़ को हस्तगत करने के लिये स्वयं ही अजमेर और मारवाड़ को अपने अधीन कर उसकी खूब ही दुर्दशा उधर अजित अपने भाई महित महाराणा राजसिंह की में चले गये।

१३—अजित और दुर्गादास (२)

[illegible]

फिर मुग़लों से लोहा लिया। दुर्गादास की वीरता से औरंगज़ेब
[illegible] कितनी ही बार नीचा देखना पड़ा। वीरवर दुर्गादास का
[illegible]त्याग, प्रभुभक्ति, मातृ-भूमि-प्रेम एवं अमानुषिक साहस
[illegible] संसार मारवाड़ भर में फैल गया था। अतः लाखों राजपूत
[illegible]र उसकी सहायता करने के लिये, उसके झंडे के नीचे आ खड़े
[illegible]ए थे। दुर्गादास चार वर्ष तक निरन्तर औरंगज़ेब का सामना
[illegible]रता रहा। इन चार वर्षों में दोनों ही पक्ष की कितनी ही
[illegible]र जय पराजय हुई, किन्तु दो तीन युद्ध बड़े मार्के के हुए।
[illegible]नमें सिवाना और जोधपुर के युद्ध बहुत प्रसिद्ध हैं। जोधपुर
[illegible]ा युद्ध संवत् १७३७ की आषाढ़ बदी सप्तमी को हुआ था। इस
[illegible]द्ध में औरंगज़ेब स्वयं रणक्षेत्र में अवतीर्ण हुआ था। राठौड़ों
[illegible] सेनापति वीरवर सोनग थे। वीरवर सोनग ने इतनी वीरता
और तेज़ी से औरंगज़ेब पर आक्रमण किया कि वह हक्काबक्का हो
[illegible]लों का तड़ा काठ की पुतली की तरह खड़ा रह गया। जब राठौड़
[illegible]र उसके अति समीप पहुँच गये, तब वह प्राण ले कर भाग गया
और मुग़लों का प्रधान सेनापति इस युद्ध में मारा गया। साथ ही
राठौड़ों के भी बहुत से वीर इस युद्ध में काम आये। इस विजय
से उत्साहित हो वीरवर सोनग निरन्तर शत्रु का विनाश करता रहा।
उसके नाम से मुग़ल थर थर कांपने लगते थे। अन्त में औरंग-
ज़ेब ने उसके पास दूत भेज कर सुलह के लिये प्रार्थना की।
उसने राजकुमार अकबर को सात हज़ारी मंसबदारी दी थी और
सोनग को अजमेर का अधिकारी बनाया। औरंगज़ेब ने संधि-
पत्र में लिखा था [illegible] न परमेश्वर की साक्षी कर के इस संधिपत्र
पर [illegible] लगा" इस संधिपत्र
की [illegible] इसने भी [illegible]
[illegible]

औरंगज़ेब दक्षिण को चला गया। सोनग से यह सदा ही ... रहा और अन्त में उसे विष दिलवा कर मरवा डाला।

असदखाँ से सोनग की मृत्यु का हाल सुन कर अब मुज़... मारने के विरुद्ध कार्रवाई औरंगज़ेब करने लगा। फिर युद्ध छिड़ा। मेड़ता के पास असदखाँ और राठौड़ों में लड़ाई हुई। इस लड़ाई में सोनग का भाई अजबसिंह मारा गया। अजबसिंह ही ... लड़ाई में, राजपूत सेना का सेनापति था। रामसिंह और ... सिंह नामक दो राठौड़ों ने पुरमंडल नामक नगर, ध्वंस कर के ... के हाकिम कासिमखाँ को मार डाला।

इस बीच में वीरवर दुर्गादास की अनुपस्थिति में ... संवत् १७४३ वि० को चैत्र पूर्णिमा को स... के सम्मुख प्रकट हु... सब से प्रथम वीरवर महाराज छत्रसाल ... ने नये ... धाड़ेश्वर को अभिवादन किया। तदनन्तर अन्य मारवाड़ी सा... ने महाराज को नज़र दी।

उधर सेनापति इनायतखाँ ने जा, औरंगज़ेब को यह समाच... सुनाया और यह भी कहा कि जो राठौड़ अभी तक बिना सर... के इस बहादुरी से लड़ रहे थे, वे अब अपने महाराज की ... किस क़दर ताक़तवर हो गए हैं—इस बात पर हुज़ूर ... फरमावें। अदीनाह ने गुज़ारिश है कि अब नई फौज के ... काम नहीं चलेगा।

औरंगज़ेब यह हाल सुन कर बहुत चिन्तित हुआ और ... खाँ को सेनापति बना कर मारवाड़ की ओर रवाना कि... इस समय भालपुरा और पुरमांडल की मुसलमान सेना को राठ... और हाड़ा ने मिल कर हरा दिया। किन्तु इस पुरमंडल युद्ध ... सांवलदास हाड़ाराव मार गये।

संवत् १७४३ में, शफीखाँ अजमेर का सूबेदार हुआ। उस पर दुर्गादास ने चढ़ाई की। अजमेर से हट कर युद्ध हुआ था। शफीखाँ भाग कर अजमेर में घुस गया। औरंगज़ेब ने जब यह हाल सुना तो शफीखाँ से यह कहला भेजा कि अगर तुम दुर्गादास को हरा सकोगे तो तुम्हारा दर्जा बढ़ा दिया जायगा। अगर नहीं तो तुम्हारा दर्जा तोड़ दिया जायगा। शफीखाँ बड़ी विपत्ति में पड़ा। अन्त में उसने कपट से काम निकालना चाहा। उसने अजित को लिखा कि "मुझे आपके राज्य को लौटा देने की सनद मिली है, लिहाज़ा आप यहाँ आ कर उसे ले जाइये"। उसने सोचा कि जब अजित यहाँ आवेगा तब उस पर धोखे से हमला कर के या तो उसे मार डालेंगे या क़ैद करेंगे।

इधर अजित, बीस हज़ार राठोड़ों को ले कर, अजमेर की ओर चला। उसके चित्त में सन्देह हुआ और पहिले मुकुन्ददास को कुछ सेना दे कर उसने आगे भेजा। मुकुन्ददास से यह [illegible]ाल सुन कर, अजित ने कहा "सरदारों! हम लोग यहाँ तक आ गए हैं। चलिये, एक बार खाँ साहब के मेहमान तो बनें"। यह कह कर निडर अजित नगर की ओर चले। अजित को आता देख शफीखाँ से कुछ न बन पड़ा, बल्कि अजित की परवता स्वीकार कर ली। उसको डर दिखाने के लिये अजित ने सरदारों से नगर जला डालने की सलाह की। यह बात सुन कर शफीखाँ बड़ा भयभीत हुआ और अजित को बहुत से घोड़े और धन भेंट में दे कर उसे मनाया।

संवत् १७५० में जोधपुर, जालोर और सिवाना के मुसलमान हाकिमों ने मिल कर अजित पर आक्रमण किया। अजित इस युद्ध में हार गए। उन्हीं दिनों मुसलमानों ने एक साँड़ को मार डाला। इससे हिन्दू लोग बहुत बिगड़े मुकुन्ददास ने मोकलसर

नामक स्थान में उन पर आक्रमण किया। इस युद्ध में हार गये। चोक का हाकिम अपने सामन्तों समेत कैद हो गया।

इस युद्ध के बाद धीरे धीरे मुसलमानों के सब नगर राठौड़ों के हाथों में आने लगे। उसी समय जफरखां ने अजित बड़ी सेना लेकर चढ़ाई की। इस सेना के साथ शफीखां भी था। अजित ने दुर्गादास के पुत्र को सेना समेत उनके लिये भेजा। इस युद्ध में भी राठौड़ विजयी हुए।

इसी वर्ष राना की भतीजी के साथ विवाह हो गया।

औरंगज़ेब के छोटे पुत्र अकबर की एक लड़की दुर्गादास के पास कैद थी। औरंगज़ेब इसी कारण बड़ा चिन्तित था। अन्त में उसने यह भी लिखा कि अगर तुम उसे छोड़ दोगे, तो अजित को उसका राज लौटा दिया जायगा और तुम्हें पंचहज़ारी मनसबदारी दी जायगी। दुर्गादास ने लड़की लौटा दी और पंचहज़ारी मनसबदारी के बदले में जालौर, सिवांची और चित्तौड़ मांग लिये।

संवत् १७६७ वि० के पौष मास में अजित ने जोधपुर में प्रवेश किया। जब अजित नगर में आया तब मुकुन्दलां ने उसे मेड़ता के शासन की सनद दी।

इसके थोड़े ही दिनों बाद राजपूतों के प्रधान शत्रु औरंगज़ेब ने प्राण छोड़े। उस समय तमाम राजपूत, मरवाड़ में बसे हुए मुसलमानों पर टूट पड़े। जो मुसलमान सामने आया वह मारा गया। सारे मुसलमान भागने लगे। मुसलमान दि[illegible] निवासियों का वेश धर कर "[illegible]" जपते जपते, मारवाड़ से भागने [illegible] मुंड मुड़ा कर अपनी जान [illegible] [illegible] कुछ मारे गये।

इसके बाद अजित ने दिल्ली में आ कर और सय्यदों से मिल कर "जज़िया" कर, उठवा दिया।

बहादुर शाह के मरने के बाद २ बादशाह दिल्ली के सिंहासन पर बैठे और मारे गये। तब फर्रुखसियर दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। यह भी अनेक उपद्रव करने पर, महाराज अजित की सहायता से उनके विपक्षी सय्यद भाइयों द्वारा मारा गया।

अनेक सुलतान दिल्ली के सिंहासन पर बैठाये गये और मार डाले गये। अन्त में मुहम्मदशाह या 'रंगीले बादशाह' देहली के तख्त पर बैठा। उसने कई एक सरदारों को मिला कर सय्यद भाइयों को मार डाला। अब उसने महाराज अजित से छेड़छाड़ आरम्भ की। जब अजित ने यह हाल सुना तब क्रुद्ध हो कर उन्होंने अजमेर पर धावा बोल उसे अपने हस्तगत कर लिया। वहाँ का सुदृढ़ किला "तारागढ़" भी अपने अधीन कर लिया। उन्होंने अपने नाम का सिक्का चलाया और अपने नाम के बाट (तौलने के) चलाये।

संवत् १७७८ में मोहम्मदशाह ने फिर अजमेर को वापस लेना चाहा। इसलिए उसने मुज़फ्फ़र खाँ को भेजा। अजित यह समाचार सुन अपने पुत्र अभयसिंह को भेजा। जब मुज़फ्फ़र खाँ ने राठोड़ों की भारी सेना को देखा, तब वह डर कर कायरों की तरह बिना लड़े ही भाग गया। अभय सिंह यह देख लूटता मारता दिल्ली की ओर बढ़ा, किन्तु रिवाड़ी तक जा कर, अजमेर लौट आया। वहाँ अजित आ कर, उससे मिले।

मोहम्मदशाह ने युद्ध बंद करने के लिये नाहरखाँ नामक सरदार को चार हज़ार सैनिक दे कर अजित के पास भेजा। उस समय अजित सांभर में थे। वहाँ पहुँच कर उसने अभय और अजित से

स्वदेश-प्रेमी थे। मारवाड़ी कवियों ने उनकी वीरता का [illegible] किया है। कदाचित् ही कोई ऐसा राजपूत होगा जो उनके यह दोहा न जानता हो—

> जननी सुत ऐसो जने, जैसो दुरगादास।
> बाँधि मुड़ासा राखियो, बिन खंभा आकास॥

१५–भूकम्प

भूकम्प हमारी पृथिवी को समय समय पर हिलाते रहते हैं। यह सदा इस बात का प्रमाण है कि भूगर्भ के भीतर किसी शक्ति [illegible] काम किया करती है। भूमि का एक छोटा सा झोंका सारे हरे भरे नगरों और ग्रामों का सर्वनाश कर डालता है। सैकड़ों मनुष्यों को अपने प्राण गँवाने पड़ते हैं, सहस्रों मनुष्य गृहहीन और आश्रयहीन हो जाते हैं। लाखों करोड़ों की सम्पत्ति धूल में मिल जाती है। ऐसी भयानक दशा इस बात को भले प्रकार प्रकट करती है कि प्रकृति के घोर संग्राम में मनुष्य अति लघु और तुच्छ है। प्रकृति की [illegible] मात्र मनुष्यों के रंग-महल को धूल में मिला देती है और उनके अभागे निवासियों की हड्डियाँ दब कर चूर चूर हो जाती हैं या वे निस्सहाय [illegible] का [illegible] हुआ देखते रहते हैं।

इस पाठ में [illegible] कि भूकम्प [illegible] होता है [illegible] है। यदि पृथि[illegible] मनुष्य [illegible] नहीं र[illegible] भूकम्प [illegible] तो मनुष्य जाति [illegible] रहना इस पृथिवी पर कठिन हो जाय।

समुद्र ने टक्करें मार मार कर बड़ा परिवर्तन कर दिया है। जायज कहते हैं कि ढालू चट्टानों के घिसने से उनमें गुफाएँ बन गई हैं। बहुत स्थानों पर ठोस पत्थरों की चार खंभे ही से खड़े रह गये हैं। कहीं कहीं समुद्र ११० तक अंदर घुसा चला गया है। डाक्टर डिवर्ट कहते हैं स्थान पर एक चट्टान के टुकड़ों ने, जो कई समय के लिये बचे रह गये थे, बंद सा बना दिया था, तूफान आने के समय समुद्र की लहरें इस प्रकार टक्करें मानों गोले चल रहे हैं। अन्त में समुद्र ने उसे तोड़ ही डाला।

इंगलैंड के पूर्व में नौरफक और सफक दो प्रान्त हैं किनारों को बहुत हानि पहुँचती है। यहाँ शेरिंगम नामक एक सराय बनाई जाने लगी। तब यह हिसाब लगाया समुद्र इस स्थान पर ७० वर्ष में पहुँच जायगा। क्योंकि वर्ष १२ गज़ ज़मीन को निगल जाता है। इस हिसाब के समय इस बात पर ध्यान नहीं दिया गया कि ज़मीन समुद्र की से भीतर की ओर ढालू थी। परिणाम यह हुआ है कि ज्यों ज्यों समु भूमि की ओर बढ़ता गया त्यों त्यों उसकी काटने की शक्ति ब गई। सन् १८२४ और १८२९ ई० के बीच समुद्र ने १७ गज़ भू को साफ कर लिया। सन् १८२९ ई० में जिस स्थान पर १० पहिले एक ५० फुट ऊँची चट्टान खड़ी थी वहाँ पानी का काफ हो गया। उसमें नाव भली भाँति चल सकती थी। कहने की आवश्यकता नहीं कि आज उस सराय का चिह्न शेष नहीं रह गया। यह हाल केवल नेरफिक का ही नहीं प्रत्येक देश का, (जो समुद्र के किनारे हैं) यही हाल है। कर्मों की यह सम्मति है कि प्रकार की भाड़ी जो भारतवर्ष व बीच में है, थोड़ा होता जाता है।

चारों ओर अग्नि जल रही है। प्रत्येक बौने के द्वार पास है। उनके बैठने के ढंग से यही मालूम होता है कि का मांस खाने का वे लोग प्रबन्ध कर रहे हैं। हमने कैदियों से पूँछ कर निश्चय कर लिया है कि मांस-भक्षी हैं।

बौने खेती नहीं करते और न कोई अन्य पदार्थ ही हैं। वन के बाहर वाले कृषक तंबाकू केला आदि उत्पन्न उन्हींको चुरा कर बौने अपनी आवश्यकता पूरी करते लोगों के अस्त्र शस्त्र—बर्छे, तीर, कमान हैं। धनुष के किनारों पर ये लोग रेशम के फूल लगाते हैं और बीच में पूँछ बांधते हैं। यह पूँछ धनुष को कड़ा करने में आती है। तीरों की लंबाई लगभग १८ इंच होती है। अगला सिरा विष में बुझाया जाता है। इन तीरों को थानी से छूना चाहिये। क्योंकि यह सूखा विष भी होता है। इस विष के प्रयोग से बड़ी ही भीषण मृत्यु होती है। ईश्वर न करे कि इससे किसी की मृत्यु हो। विष से मरने की अपेक्षा अन्य सब प्रकार से मनुष्य मरना कर सकता है। इस विष-प्रयोग की बात हम पहले न जान थे। सन् १८८७ ई० में इन बौनों के साथ एक क्षुद्र युद्ध में हमा सामान्य कई सिपाही सामान्य रूप से घायल हुए थे। हमने उन तुरन्त इलाज किया। परन्तु वे बचे नहीं। यदि वे तीर न होते तो बिना इलाज ही के अच्छे हो जाते। घायलों में से एक धनुष-टङ्कार रोग से पीड़ित हो कर मर गये। कई एकों के स्थान सड़ गये और वे बुरी तरह मरे। जो लोग कुछ दिनों और भी रहे, उनका रक्त ऐसा दूषित हो गया था कि उनको उनका और बोध ज्ञान पड़ता था।

इस विष का प्रतिकार करने वाली औषध हमने लगभग एक वर्ष में ढूँढ़ निकाली। बहुत परीक्षा करने पर यह मालूम हुआ कि आहत स्थान के पास एमन कार्ब (Ammon carb) लगाने से बड़ा लाभ होता है। ये लोग अपने विष को जिस वस्तु से तैयार करते हैं उससे डाक्टर फ्रेज़र ने स्ट्रोफैंथिन (Stropanthin) नाम की एक औषध तैयार की है। इसकी $\frac{1}{6}$ ग्रेन मात्रा व्यवहार करने से मृत्यु हो सकती है।

बौने मनुष्य दो भागों में विभक्त हैं। एक दल के लोगों का रंग कुछ लाल होता है दूसरे दल वाले बेहद काले होते हैं। दोनों ही दल वालों का मस्तक गोल और खुपड़ी बड़ी होती है। उनके हाथ छोटे छोटे और निचले और पैर कुछ टेढ़े होते हैं। फिर भी किसी किसी बौने का चेहरा सुन्दर होता है।

बौनों के सरदार की एक स्त्री का रूप वर्णन करने योग्य है। उसके शरीर का रंग अत्यन्त उज्ज्वल था। वह बहुत गहने नहीं पहने हुए थी। केवल लोहे के कुछ बाली और नाक में एक नथ थी। उसके छोटे छोटे काले बालों में एक प्रकार का तेल लगा था। इससे उसके मुख का सौन्दर्य बढ़ गया था। वह बड़ी शान्त थी। वह शिल्प काम पर निपुण थी. उसको बड़े मनोयोग तथा अध्यव-साय के साथ करती थी।

यह हम लिख चुके हैं कि [illegible] में एक ही [illegible] है [illegible]

रहती, साफ कपड़े पहनती और कोई भी वस्तु बिना
नहीं छूती थी। वह अपनी जीभ को थोड़ी देर भी नहीं रोक
थी। यह न समझिये कि, वह बुरी बातें बका करती थी,
उसकी बातें बड़ी ही रहस्यपूर्ण हुआ करती थीं।

हमारे कैदियों में अठारह वर्ष का एक बालक भी था
अल्पभाषी था। दिन रात वह अपने काम ही में
किसीसे बातचीत नहीं करता था। यदि कोई उससे प्रश्न
तो वह मारे लज्जा के मर सा जाता था। कोई उस पर
भी करता तो वह उसे चुपचाप सह लेता था। मतलब यह है
असभ्य बौने शिक्षा पाने पर थोड़े ही दिनों में सुसभ्य
सकते हैं। यद्यपि वे अपने लिये एक भी वस्तु नहीं बना
तथापि उनमें सभ्य मनुष्यों की तरह सज्जनता जरूर है। वे लोग
प्रेम करना और प्रेम का बदला देना भी जानते हैं। वे लोग बड़े
साहसी और अध्यवसायी होते हैं। वे वन में सिंह और बाघ से
भी नहीं डरते। चतुरता में इनसे शिकारियों को भी हार
पड़ती है। हमें बौना जाति के ऐसे बहुत से दृष्टान्त मालूम हैं, जो
जंगली भैंसों और हाथियों द्वारा हत हुए हैं, पर ये छुद्र मनुष्य
बौने इन भीषण जानवरों को सहज ही में ठिकाने लगा देते हैं।

बौने लोगों की बस्तियाँ बड़े बड़े वृक्षों के नीचे होती हैं।
एक ऐसा गाँव देखा है जिसमें छियानवे घर थे। वे छोटे घर बहुत
ही साफ सुथरे थे। चलने फिरने से बीच में जो रास्ता पड़ गया
था, वह पाँच छः फीट से अधिक चौड़ा न था। जिस गाँव का
रास्ता जितना ही अधिक चौड़ा होता है, उसकी बस्ती उतनी ही
अधिक होती है। घर के सामने चार दरवाज़े होते हैं। दरवाज़े
फुट से अधिक ऊँचे नहीं होते। आवश्यकता के समय घर से भागने
के लिये गुप्त द्वार भी होते हैं। गाँव के सब घर वृत्ताकार बने

जाते हैं। वृत्त के बीच में उनके राजा या सरदार का घर होता है। राजा की चौकसी रखना प्रत्येक बौने का काम है। घरों की ऊँचाई चार फीट, लंबाई आठ दस फीट और चौड़ाई छः सात फीट होती है। पेड़ों के बड़े बड़े पत्ते ही उत्तम बिछौने समझे जाते हैं।

सवेरा होते ही प्रायः सभी बौने भोजन की सामग्री एकत्र करने के लिये घर से बाहर निकलते हैं। पहले दिन के बनाये जाल और गढ़ों को ढूँढ़ना ही उनका प्रथम कार्य होता है। घरों में जो लोग रह जाते हैं, वे गाँव की रखवाली करते हैं।

इन बौनों के साथ कभी कभी बाहर रहने वाले किसानों की लड़ाई हो जाती है। इसका कारण यह है कि ये लोग रात को उनके घरों से चीज़ें चुरा लाते हैं। इन लोगों में कोई नैतिक नियम न होने से, चोरी करने में बड़ी सुविधा होती है। इन्हें ज्योंही कोई चीज़ पसन्द आती है त्योंही ये लोग उसे ले भागते हैं। इसीलिए किसान कहते हैं कि, ये जाति पृथिवी से एक दम मिट जाय तो अच्छा हो! बौने यदि अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित न हों तो कई मिल कर भी एक किसान का सामना नहीं कर सकते, किन्तु यदि हाथ में हथियार हो तो एक बौना भी एक बड़े योद्धा का सामना कर सकता है। हमारे दल का एक साहसी बंदूकधारी सिपाही एक दिन एक साधारण बौने का मुकाबला न कर सका। बौने सदा सतर्क रहते हैं। किन्तु हमारे सिपाही किसी को सामने न देख कर तुरन्त असावधान हो जाते हैं इसलिये वे मार जाते हैं।

बौनों के शरीर से एक [illegible] की दुर्गन्धि आती है। इसीसे [illegible]

तक अगम्य अवस्था में रहने पर भी वे पृथिवी पर से लुप्त नहीं हुए। अतएव आशा की जाती है कि भविष्य में वे अवश्य ही साध्य हो जायँगे।

पं० लक्ष्मीनारायण शास्त्री

१७–नेपोलियन का जन्म

फ्रांस के किनारे लगभग एक सौ मील दूरी पर मेडिटरेनियन महासागर के मध्य में, सुन्दर पहाड़ों और झीलों से सुशोभित कार्सिका नामक एक छोटा सा द्वीप है। प्राचीन काल में यह इटली का एक प्रान्त था। इटली ही की भाषा और इटली ही की सब रीतियाँ यहाँ प्रचलित थीं और इटली वालों के साथ ही इनकी सहानुभूति थी। सन् १७६७ ई० में फ्रांस वालों की एक सेना ने यहाँ आ कर इसको घेर लिया। अनेक युद्ध भी हुए परन्तु हाथी और चींटी की बराबरी कैसी? अन्त में विवश हो कर बेचारे हार और कार्सिका बूर्बन राजाओं के अधीन हो गया।

इस लड़ाई के समय चार्ल्स बोनापार्ट नाम का एक वकील रहता था। वह इटालियन जाति से सम्बन्ध रखता था और उस समय बिल्कुल नवयुवक था। वह बड़ा रूपवान था और जैसा रूपवान था वैसे ही उसकी मानसिक शक्तियाँ भी बड़ी बलवती थीं। उसकी विचार शक्ति असाधारण थी और कुलक्रम भी बड़ा उच्च था। परन्तु कुलक्रमागत धन इत्यादिक सब नष्ट हो चुका था। सारे परिवार का जीवन निर्वाह मात्र चार्ल्स बोनापार्ट की आमदनी पर निर्भर था। इसका विवाह कार्सिका द्वीप की एक रूपवती गुण-युक्त युवा सुशिक्षिता कन्या से हुआ था। तेरह बालक बालिकाओं में से केवल आठ ही जीवित रहे। चार्ल्स बोना-पार्ट एक अच्छा वकील था और वकालत अच्छी चलने के कारण

अच्छी तरह अपने परिवार का पालन करता था। एक अच्छे वंश में जन्मग्रहण करने के कारण वैसे ही उसकी प्रतिष्ठा बहुत थी परन्तु मस्तिष्क बलवान और बुद्धि तीव्र होने से वह सर्वप्रिय हो गया।

कार्सिका द्वीप के अजैक्शियो नामक प्रधान नगर में इसका एक बड़ा भारी पत्थर का बना हुआ विशाल भवन था। इसके अतिरिक्त बस्ती से थोड़ी ही दूर समुद्र के तट पर एक बड़ा रमणीक बँगला भी था। ग्रीष्म ऋतु में वह परिवार सहित उसी बँगले में रहा करता था। जब फरासीसियों ने कार्सिका पर चढ़ाई की तब चार्ल्स बोनापार्ट ने अपने शान्तिमय प्रदेश को त्याग कर स्वदेश रक्षा के लिये हाथ में खड्ग ग्रहण किया और जनरल पिओली के सेनापतित्व में लड़ने को उद्यत हो गया। उसकी गृहदेवी लेटीटिया के उस समय केवल एक बालक जोज़ेफ नाम का था और दूसरे बच्चे के पैदा होने का समय बहुत निकट था। यह छोटा सा द्वीप इस युद्ध से नष्टप्राय हो चुका था। यद्यपि जनरल पिओली को इस लड़ाई में बहुत कामयाबी भी हुई थी, तथापि उनके शत्रु उनको दबाए हुए थे। देवी लेटीटिया ने अपने पति का साथ दिया और गर्भवती होने की कुछ भी परवाह न कर, घोड़े पर सवार हो पति के साथ चली। लड़ाई बहुत दिनों तक न चली और कार्सिका फ्रांस के अधिकार में चला गया। अगस्त सन् १७६९ ई० की १५ वीं तारीख को लिटीटिया अजैक्शियो नगरस्थ गृह में शान्त चित्त हो कर निकटस्थ प्रसव-काल की प्रतीक्षा करने लगी। प्रातःकाल वह गिरजे में गई परन्तु ईश्वर प्रार्थना के बीच ही में वह घर लौटने के लिये विवश हो गई। घर पहुँचने के थोड़ी ही देर के बाद उसने जगत्-विजयी नेपोलियन बोनापार्ट को जना। यदि नेपोलियन

घाड़ से दो मास पूर्व उत्पन्न हुआ होता तो यह जन्म का लियन होता न कि फ्रांसीसी।

इस सुपुत्र के जन्म को हुए अभी बहुत काल व्यतीत न हुआ कि चार्ल्स बोनापार्ट का शरीरान्त हो गया। पर यह बात उस भली भाँति मालूम हो गई थी कि उसका यह पुत्र किसी दिन महान पुरुष होगा। कहा जाता है कि मृत्यु के पूर्व अवस्था में उसने कहा था "नेपोलियन मेरी सहायता कर। की मृत्यु से इसी बोनापार्ट एक निस्सहाय विधवा रह गई। आठ बच्चों का पालन पोषण करने का भार इसके ऊपर। इसके पास धन तो नाम मात्र को था, किन्तु यह एक बुद्धिमती स्त्री थी। उसके बच्चे उसके सदाचार को सदैव किया करते थे और कोई भी कार्य उसकी आज्ञा लिये करते थे।

नेपोलियन विशेषतया अपनी माता से बड़ा प्रेम साथ ही साथ उसकी प्रतिष्ठा भी उसके हृदय में सदैव यह कहा करता कि जिस उन्नति के शिखर पर मैं पहुँचा हूँ उसका मूल कारण मेरी माता है और उसके हम दबे हुए हैं और सदैव दबे रहेंगे। उसके ध्यान में यह बात जमी हुई थी कि एक बार उसने कहा था "मेरा है कि बच्चे का भावी बुरा या भला आचार उसकी मा ऊपर निर्भर है।" धन पाने पर सब से पहिला काम जो किया वह यह था कि उसने अपनी माता के आराम की व्यवस्थित कर दी। इस मातृभक्ति का यह फल था कि वीर इतना बड़ा न इतनी उन्नति की। सच है, जिस मनुष्य जाति की प्रतिष्ठा की है उसके जीवन में वास्तविक सुख

जिस जाति ने स्त्री जाति का आदर किया है वही जाति सभ्य
तियों में गिनने योग्य हो सकती है।"

जिस समय नेपोलियन ने फ्रांस के राज्य को डोर को अपने
थ में लिया उस समय सब से पहिला उसका काम स्त्रियों के
ये पाठशालाएँ स्थापित करना था। नेपोलियन कहता था कि
स को अगर आवश्यकता है तो सच्ची माताओं की।

मेडम बोनापार्ट अपने पति के शरीरान्त के पश्चात् अपने बच्चों
को लेकर अपने घर रहने लगी। यहीं पर हमारे वीर नेपोलियन
अपने शैशव काल को व्यतीत किया। जिस घर में नेपोलियन
। करता था वह अभी तक इस द्वीप में विद्यमान है। नेपोलियन
चुप और प्रसन्न स्वभाव वालों में से न था। वह बिलकुल चुप-
प रहता था उसके चेहरे से संजीदगी टपकी पड़ती थी। उसको
ध बहुत जल्द आता था और जब क्रोध आता था तब वह
ी कठिनाई से उसे दूर कर सकता था। अपने साथियों से
त मिलता न था और न खेलकूद में उसका चित्त लगता था।
के भाई और उसकी बहनें उससे बहुत प्रसन्न न रहते थे, परन्तु
उसका आदर यथेष्ट करते थे। यद्यपि जोज़ेफ़ नेपोलियन से
र में बड़ा था, तो भी वह नेपोलियन से डरा करता था।
पोलियन अभिमानी पूरा था। इस अभिमान के पीछे उसे कितनी
ठिनाइयाँ सहनी पड़ी थीं, परन्तु उसका अभिमान दूर न हुआ।
र्सिका द्वीप में अभी तक छोटी सी पीतल की तोप रखी हुई है।
सी तोप से नेपोलियन खेला करता था। तोप की आवाज़ उसको
ही मधुर मालूम पड़ती थी [illegible] किसी से ईर्ष्या करता था
र न किसी पर [illegible] करना पसन्द करता था। उसको
[illegible]

से नेपोलियन बड़ा हो कर "विश्वविजयी" की उपाधि से विर्
हो सका था।

१८—मनुष्य की उत्पत्ति

मनुष्य की उत्पत्ति के विषय में भिन्न भिन्न देशों में भिन्न
कथाएं सुनी जाती हैं। तिब्बत में एक कथा प्रचलित है कि
पुराने समय में यह पृथिवी पानी के भीतर डूबी हुई थी।
धीरे पानी से बाहर निकली है। यह पृथिवी पांच देशों में विभ
थी। उन पांचों के नाम हैं भारतवर्ष, चीन, इर, (इ
फारस, तुर्किस्तान इसीके अन्तर्गत हैं) मंगोलिया और ति
भारत में देवता रहते थे और उनकी भाषा संस्कृत थी। इसी
संस्कृत का दूसरा नाम देववाणी है। चीन देश में नाग या स
के राजा रहते थे। इसीसे चीन के सम्राट् आज तक नागरा
पूजा करते हैं। उनके झंडे में नागराज ही का चित्र रहता है
देश में असुरों का वास था। ये असुर सदा भारतवासी दे
के साथ युद्ध में लगे रहते थे। असुरों के अत्याचार से दे
इन्द्र बहुधा शान्ति पूर्वक राज करने वाले नहीं थे। मंगोलि
ओनपो नाम के राक्षस रहा करते थे। ये सब प्रकार के मोह
थे। अन्न छूते न थे। वानर जाति ने तिब्बत का आविष्कार
था। वर्तमान कल्प के पहिले जब महाजल [illegible] अन्तर्
गया [illegible] घाटियों में बह कर नदी मार्ग से सम
[illegible] पर्वतों पर कुलकता दौड़ पड़े और
[illegible] फल फूलों से विभूषित हो कर
सुन्दरता ने बड़ी मनोहर शोभा धारण कर ली। मञ्जुल
[illegible] सुन्दर [illegible] की सङ्गीत से मधुर हो गये।
[illegible] पशु आगे पड़े।

। इस बात में वे अपनी बड़ी बड़ाई समझते हैं। तिब्बत वालों की समझ में तिब्बत ही पृथिवी पर सब से ऊँचा देश और मनुष्य का जन्मस्थान है और मनुष्य के आदिपिता स्वर्ग से भेजे जा कर तिब्बत के [illegible] ही में [illegible] से पहिले रहते थे। यहीं मनुष्य की उत्पत्ति की कथा है जो तिब्बत वाले पूछने पर बड़े गौरव के साथ वर्णन किया करते हैं।

[मुसाफिर

१६—सच्चा वैराग्य

कहीं पर किसी नगर एक संन्यासी आए और एक पेड़ तले आग जला कर धूनी रमाई। वे बनावटी साधु न थे किन्तु सच्चे [illegible] साधु थे। थोड़े ही दिनों में उनकी ख्याति चारों ओर फैल गई। दूर दूर से स्त्री पुरुष उनके दर्शनों को आने लगे। एक दिन एक सेठानी जी भी साधु के दर्शनों को गई। सेठानी जी सुन्दरी नहीं थी। उसका रंग काला था। दोनों आँखें छोटी छोटी थीं। नाक भी कुछ चपटी थी और हाथ पाँवों की गठन भी भद्दी थी। परन्तु अपने रूप का अभाव दूर करने की आशा से [illegible] शरीर को [illegible]

हो।" सेठानी बोली "महाराज आपके चरणों के दर्शन करने को आई हूँ।" साधु ने कहा—"साधु के दर्शन करने आई हो तो इतने गहने कपड़े पहिनने की क्या आवश्यकता थी?" सेठानी बात को सुन कर कुछ लज्जित हुई और चुपचाप खड़ी थी। यह देख संन्यासी जी कहने लगे—"माता! मेरी बात का बुरा मत मानो क्योंकि *साधु संन्यासियों का स्वभाव ही ऐसा होता है।* हम लोग जो मन में आता है वह कह डालते हैं। जी चाहे बैठ जाओ।"

साधु की बातें सुन उसे कुछ ढाढ़स बँधा और वह साधु के समीप एक ओर बैठ गई। साधु अन्य दो मनुष्यों से कुछ देर वार्तालाप करके सेठानी से बोले—"लो माता! चरणों के दर्शन तो तुमने कर लिये, अब चली जाओ।"

से०—बाबा! मैं आपके मुखारविंद से कुछ धर्मोपदेश सुनना चाहती हूँ।

साधु—तुम्हारा धर्म कर्म तो गहने कपड़े की चिन्ता में है। जब चिन्ता से छुट्टी पा लो तब धर्म कर्म को याद करना।

से०—बाबा! हम लोग संसारी जीव हैं, हमारी मति पाप में दौड़ती है। इसीसे आपके चरणों के दर्शन करने आई हूँ। यदि आप भी पापी मुझे समझ कर भगा देंगे तो मेरी क्या होगी?

साधु—हम लोग पापी जान कर किसी को नहीं भगाते। बात है—भरे हुए घड़े में हवा नहीं भरती। विषयवासना से तुम्हारा मन परिपूर्ण है। उसमें धर्म की हवा कैसे भर सकती है।

यथार्थ दान के पात्र हैं। क्योंकि "दरिद्रान् भर कौ[illegible]
मा प्रयच्छेश्वरे धनम्। व्याधितस्यौषधम् पथ्यम् निरु[illegible]
किमौषधैः।" अर्थात् जो दरिद्र हो उसीको दान दे[illegible]
को धन मत दो। क्योंकि जो रोगी है उसीको दवा [illegible]
चाहिये—निरोगी को दवा देने से क्या लाभ होगा? [illegible]
से माता मेरी विनती है कि तुम अपने कानों के दोनों [illegible]
उतार कर इन दोनों को दे दो। ये बेचारे अकाल के [illegible]
मरने से बच जायेंगे।

मानु के पास आ कर ऐसे घोर सङ्कट में पड़ना पड़ेगा—
बात तो सेठानी ने कभी स्वप्न में भी नहीं सोची थी। पर वे
बड़ी कठिनाई में पड़ गईं। कानों के सोने के फूल, जो उ[illegible]
न मालूम कितनी मानतीता कर पति से बरजोरी बन[illegible]
थे, क्योंकर उतार कर उन भिखमंगों को दे दे; इतना म[illegible]
इतनी उदारता, इतनी पर-दुःख-कातरता होना क्या [illegible]
पुरुष का काम है! वह सोच सोच कर और बहाना गढ़[illegible]
बोली—

सेठा०—महाराज! मेरे बाप ने इन्हें मेरे लिये बड़े चाव से गढ़[illegible]
वा। ये दोनों मेरे बाप के हाथ की निशानी हैं। मैं [illegible]
प्यारी वस्तु को क्यों कर किसी को दे सकती हूँ।

मानु—अच्छा महाराज! यदि यही बात है तो हाथों के दोनों
[illegible]

सेठा० [illegible] हुए हैं

मानु [illegible] दो दे डालो।

[illegible]

[illegible]

पिता की सेवा करते हुए ब्राह्मण-कुमार के कान में जब . प्रकार का शब्द सुन पड़ा, तब उसने सिर उठा कर बाहर देखा और तपस्वी ब्राह्मण को द्वार पर खड़ा पाया। तब ब्राह्मण ने पिता की सेवा करने वाले ब्राह्मण-कुमार से कहा—

तपस्वी—क्या तू अंधा है? देखता नहीं कि तेरे द्वार पर कैस अतिथि ब्राह्मण आ कर खड़ा हुआ है? अतिथि का सत्कार किस प्रकार करना होता है क्या यह तुझे किसी ने नहीं सिखाया?

ब्राह्मण-कुमार—(मुसकुरा कर धीरे से) मैं तो अंधा नहीं हूँ, किन् तुम अंधे हो, जो इस बात को नहीं देखते कि मैं अपने पूज्य पिता की सेवा कर रहा हूँ, जो इस घ के स्वामी हैं और इस समय विश्राम कर रहे हैं।

तप० ब्राह्मण—(क्रोध से) क्या तू घर का स्वामी नहीं है? मेरे लौट जाने से क्या तेरी कुछ भी हानि न होगी?

ब्राह्मण-कुमार—पिता के सामने मैं घर का स्वामी नहीं कहला सकता। घर के साथ साथ पिता मेरे भी स्वामी हैं। अतः जो कुछ कमा कर मैं लाता हूँ वह उन्हीं का है। इसके अतिरिक्त जो घर का स्वामी होत है अतिथि-सत्कार करना भी उसीका काम है। न मैं घर का स्वामी हूँ और न तुम मेरे अतिथि हो। मुझे तुम्हारे [illegible] जाने [illegible] अतिथियों का [illegible] [illegible] है, [illegible] तो केवल इस [illegible] [illegible] नहीं पिता जी [illegible] [illegible] किसी प्रकार [illegible] [illegible]

त० ब्राह्मण—(विशेष क्रोध से लाल लाल आँखें निकाल कर) अच्छा, तो क्या मैं दिखाऊँ कि मेरे जैसे तपस्वी ब्राह्मण का असत्कारित हो लौट जाना या कुपित होना कैसा बुरा होता है ? तू मेरे तपोबल को नहीं जानता, पर अब तू मेरे शाप का दुःख न सह कर समझ जायगा कि मैं कौन हूँ।

ब्राह्मण-कुमार—(मुसकुरा कर) मैं पहले ही से तुम्हें समझे हुए बैठा हूँ। तभी तो मुझे तुम्हारे शाप का तिल भर भी भय नहीं है। किन्तु हाँ, अब तुम्हें भी समझ लेना चाहिये कि मैं बगली नहीं हूँ, जिसे तुम जला कर अपने आपको ध्रुव से भी ऊँचे पहुँचे हुए जान कर अभिमान में चूर हो रहे हो। यद्यपि तुम्हारे एक साधारण तपोबल को नाश करने वाले अभिमान के प्रभाव की इतिश्री उसी जगह हो चुकी है; तथापि मैं तुम्हें अतिथि की श्रेणी से खारिज न कर फिर भी इतना अवश्य कहूँगा कि ठहरो, पिता के जागने पर मैं तुम्हारा आतिथ्य अवश्य करूँगा।

अब तो उस तपस्वी ब्राह्मण की आँखें खुलीं। ब्राह्मण-कुमार की बातों ने उसे आश्चर्य और चिन्ता में डाल दिया। वह अपने क्रोध, घमंड तथा [illegible] और सिर नीचा कर कुछ सोचने लगा।

[illegible]

का दृढ़ विचार कर लिया। उसके इष्टमित्रों ने उसे यह समझा कि गृहस्थधर्म के पालन में सब सिद्धियाँ मिल सकती हैं" पु माता पिता ने भी कहा—"बेटा! तुम्हारे लिये हमारी आज्ञा मानना ही परम धर्म है" इसी प्रकार स्त्री भी रो कर बोली—"प्राणनाथ! गृहस्थी बड़ी वस्तु है। यदि आप चाहेंगे तो इसमें रह कर भी आप सब सिद्धियाँ प्राप्त कर सकेंगे।" यह सब कुछ हुआ, किन्तु इस बोध ने एक की भी बात न मानी। पुत्रवत्सल वृद्ध पिता माता का निदेश, पतिव्रता स्त्री की प्रार्थना, अनुरागी मित्रों का अनुरोध सब निष्फल हुआ और इन्द्रबोध सब की उपेक्षा कर, तपस्या करने को वन में चला गया।

प्रथम यह गङ्गातट पर आ, तपस्या करने लगा। परन्तु थोड़े ही दिनों बाद उसने उस स्थान को एकान्त न समझ कर छोड़ दिया और समुद्र के किनारे एक निर्जन स्थान पर पहुँच कर तप करने लगा। बारह वर्ष तक उसने सब प्रकार के कष्ट सहे, किन्तु तपस्या से मुँह न मोड़ा। यहाँ तक कि उसने अपनी तपस्या कुछ प्रभाव देख कर समझ लिया, कि अब सिद्धि की प्राप्ति में विशेष विलम्ब नहीं है। उसके आश्रम में हिंसक पशुओं ने हिंसा छोड़ दी। नेवले और साँप एक जगह रह कर खेलने लगे। सिंह और मृग अपने बैर को भूल गये। चूहे और बिल्ली एक साथ एक स्थान में रहने लगे। कुछ दिनों बाद उसका सम्पूर्ण शरीर वल्मीक (बाँबी) से ढक गया और चूहा तथा साँपों ने उसमें अपने बिल बना लिए परन्तु [illegible] का इसका कुछ भी सुनगुन न जान पड़ा [illegible]

[illegible] आसन मार बैठा था उसी समय [illegible] [illegible] इसके तपस्या करने की खबर [illegible]

कृतबोध—निस्सन्देह मेरे क्रोध में यह एक बगुली भस्म हो
है, जिसे तुमने अपनी अनूठी मुसकान से बड़ा
आश्चर्य में डाल रखा है। वर्षों तप करने
ज्ञान की झलक मुझे न देख पड़ी वह ज्ञान इस
सी अवस्था में तुम्हें क्यों कर मिल गया? तुमने
जान लिया कि मैं एक बगुली को भस्म कर
हूँ? यद्यपि तुम बालक हो, तथापि अब तो गु
ज्ञानदाता गुरु हो।

ब्राह्मण-कुमार—अपने इन प्रश्नों के उत्तर पाने के लिये उतावली
करो और न मुझसे उत्तर पाने की आशा रखो
हाँ, यदि तुम काशीक्षेत्र में जा कर तुलाधार नाम
एक व्याध से मिलोगे, तो निस्सन्देह तुम्हें इस
भेद विदित हो जायगा; किन्तु आज तुम्हें य
आतिथ्य-ग्रहण करने के लिये रहना ही होगा।

विवश हो कृतबोध एक दिन ब्राह्मण-कुमार के यहाँ रह
दूसरे दिन काशीक्षेत्र की ओर चल पड़ा। वहाँ पहुँच कर उ
तुलाधार से भेंट की।

कृतबोध ने अपना अभिप्राय प्रकट किया और तुलाधा
उससे उत्तर में कहा —

तुलाधार—माता पिता साक्षात् देवता हैं। तुम उनको दुःखी
तपस्या द्वारा धर्मोष्ट लाभ करने की इच्छा र
हो। पर उनको प्रसन्न के बिना धर्मलाभ नहीं
सकता। अतएव तुम घर लौट कर उनकी सेवा क
सा करने ही से तुम सफलता और मुक्ति पा
अधिकारी होगे। वह जो बगुली तुम्हारे शरीर

मल मूत्र डाल गई है, वह असल में वकी न थी। तुम्हारे पूर्वकृत पुण्यों ही ने वकी रूप धारण किया था। वह तुम्हारी दृष्टि से दग्ध नहीं हुई है। दृष्टि तो केवल निमित्त है। वकी रूपी तुम्हारा पुण्य तुम्हारे पिता की "आह" से जल कर भस्म हुआ है। जब तुम्हारा पुण्य भस्म हो गया है, तब अहङ्कार ने तुम्हारे शरीर में प्रवेश किया है। जो कुछ पुण्य शेष रहा उसीके बल, तुम्हें धर्मावतार ब्राह्मण-कुमार के दर्शन हुए। अब घर लौट जाओ और माता पिता की आज्ञा का पालन करते हुए सफल मनोरथ हो।

मैं घृणित व्याधवृत्ति का अवलंबन कर केवल माता पिता की सेवा करता हूँ, इसीसे मैं निष्कामावस्था से पूर्णकाम हो गया हूँ।

व्याध के वचनों से कृतबोध सचमुच कृतबोध हो गया। उसका अज्ञान और हठ दूर हुआ। वह घर जा कर माता पिता की सेवा करने लगा, जिससे अन्त में उसकी मनोकामना पूरी हुई।

कथा से शिक्षा

इस कथा से मुख्य शिक्षा यह मिलती है कि पिता माता की सेवा से बढ़ कर, बालकों के अथवा युवकों के लिये उपयोगी और सद्यःफलदाताकर्म दूसरा और कोई नहीं है। जो माता पिता को मानसिक अथवा शारीरिक कष्ट पहुँचाते हैं, वे कभी सुखी नहीं रहते और न उनका कोई मनोरथ सफल होता है। पर जो अपने आचरण से अपने माता पिता को प्रसन्न रखते

कृतबोध—निस्सन्देह मेरे क्रोध में यह एक बगुली भस्म हो गई है, जिसे तुमने अपनी अनूठी मुसकान में उड़ा कर मुझे आश्चर्य में डाल रखा है। वर्षों तप करने पर भी जिस ज्ञान की झलक मुझे न देख पड़ी वह ज्ञान इस छोटी सी अवस्था में तुम्हें क्यों कर मिल गया? तुमने कैसे जान लिया कि मैं एक बगुली को भस्म कर के आया हूँ? यद्यपि तुम बालक हो, तथापि अब तो तुम मेरे ज्ञानदाता गुरु हो।

ब्राह्मण-कुमार—अपने इन प्रश्नों के उत्तर पाने के लिये उतावली मत करो और न मुझसे उत्तर पाने की आशा रखो। हाँ, यदि तुम काशीक्षेत्र में जा कर तुलाधार नामक एक व्याध से मिलोगे, तो निस्सन्देह तुम्हें इसका भेद विदित हो जायगा, किन्तु आज तुम्हें यहीं आतिथ्य-ग्रहण करने के लिये रहना ही होगा।

विवश हो कृतबोध एक दिन ब्राह्मण कुमार के यहाँ रह कर दूसरे दिन काशीक्षेत्र की ओर चल पड़े। [illegible] पहुँच कर [illegible] तुलाधार से भेंट की।

कृतबोध ने [illegible] तुलाधार ने उससे [illegible]

तुलाधार—[illegible] तपस्या द्वारा [illegible] [illegible] तुम [illegible] ज्ञान के अधिकारी होगे [illegible]

मल मूत्र डाल गई है, वह असल में बकी न थी। तुम्हारे पूर्वकृत पुण्यों ही ने बकी रूप धारण किया था। वह तुम्हारी दृष्टि से दग्ध नहीं हुई है। दृष्टि तो केवल निमित्त है। बकी रूपी तुम्हारा पुण्य तुम्हारे पिता की "श्राद्ध" से जल कर भस्म हुआ है। जब तुम्हारा पुण्य भस्म हो गया है, तब अहङ्कार ने तुम्हारे शरीर में प्रवेश किया है। जो कुछ पुण्य शेष रहा उसी के बल, तुम्हें धर्मावतार ब्राह्मण-कुमार के दर्शन हुए। अब घर लौट जाओ और माता पिता की आज्ञा का पालन करते हुए सफल मनोरथ हो।

मैं पूर्वोक्त व्याधवृत्ति का अवलंबन कर केवल माता पिता की सेवा करता हूँ, इसीसे मैं निष्कामावस्था से पूर्णकाम हो गया हूँ।

व्याध के वचन से कृतबोध सचमुच कृतबोध हो गया। उसका [illegible] घर जा कर माता पिता की सेवा करने [illegible] उसकी मनोकामना पूर्ण हुई।

कथा से शिक्षा

[illegible]

हैं, उनकी तन मन से सेवा शुश्रूषा करते हैं, उनकी सारी अभिलाषाएँ घर बैठे ही पूरी होती है।

दूसरी शिक्षा इस कथा से यह मिलती है कि मनुष्य को मनमाना कोई काम न करना चाहिये। जो लोग शास्त्र की विधि के विरुद्ध कोई काम करते हैं, उनका वह काम भी पूरा नहीं होता और उनका सारा परिश्रम भी व्यर्थ जाता है। शास्त्र की आज्ञा है कि द्विजातियों को क्रम क्रम से आश्रम बदलना चाहिये। प्रथम ब्रह्मचर्य, फिर गृहस्थ, फिर वानप्रस्थ और तदनन्तर संन्यासाश्रम ग्रहण करे। किन्तु बहुत से लोग बहुत ही थोड़ी अवस्था में माता पिता को मार्मिक वेदना पहुँचा, अपनी सहधर्मिणी को अनाथा और विलाप करती छोड़ एवं मित्रों के सत्परामर्श पर पदाघात कर, चोटी कटा एवं यज्ञोपवीत तोड़ कर संन्यासी बन जाते हैं। ऐसे लोग सरासर अन्याय करते हैं और शास्त्र की मर्यादा को भङ्ग करते हैं। ऐसी कच्ची बुद्धि के युवक न तो घर के रहते और न घाट के। या तो वे अविद्या जनित अज्ञान के कारण किसी कुसङ्ग में पड़ अपने चरित्र ही को कलङ्कित कर डालते हैं अथवा किसी पाखण्डी के फेर में पड़ अपने धर्म को गँवा बैठते हैं। इसलिये ऐसा करना सर्वथा अनुचित और शास्त्र-विरुद्ध है। मनुष्य के गृहस्थाश्रम ही में रह कर और उसके धर्मों का पालन करने से सब प्रकार की सिद्धि पा सकता है।

२१—पितृ आज्ञाकारी परशुराम

हिन्दू बालकों में से कदाचित् हो ऐसा कोई हो जिसने परशुराम जी का नाम न सुना हो किन्तु ऐसे अनेक निकलेंगे जो उनके वृत्तान्त से अपरिचित होंगे। अतएव इस पाठ में परशुराम जी का संक्षिप्त वृत्तान्त लिपिबद्ध किया जाता है।

से पितृ-आज्ञाकारी चारों बड़े सहोदरों सहित अपनी जननी का सिर काट डाला। इस आज्ञापालन पर जब जमदग्नि प्रसन्न हुए और परशुराम से बोले—"बेटा! वर माँगो।" तब उस बुद्धिमान तेजस्वी ब्राह्मण-कुमार ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया—

परशुराम—पितृदेव! आप मुझ पर प्रसन्न हुए हैं, यह मेरे सौभाग्य का फल है। पुत्र के लिये पिता की प्रसन्नता ही बड़ा भारी वर है; किन्तु आप उसके अतिरिक्त मुझे वर देने को प्रस्तुत हैं! अतः मैं विनय पूर्वक यह वर माँगता हूँ कि मेरे चारों ज्येष्ठ भ्राता और मेरी गर्भधारिणी माता पूर्ववत् जीवित हों और यह बात वे भूल जाँय कि मैंने उनका शिरच्छेदन किया था।

जमदग्नि जी महाराज बुद्धिमान् परशुराम जी की ये बातें सुन बहुत प्रसन्न हुए और अपने तपोबल के प्रभाव से परशुराम की इच्छानुसार वर दे, मरे हुए उनके चारों सहोदरों और माता को पुनः जीवित कर दिया। वे पाँचों निद्रागत मनुष्य की तरह उठ खड़े हुए और जो काण्ड हुआ था उसका चिन्ह विसर्ग तक उन्हें स्मरण न था। यह सब परशुराम की बुद्धिमत्ता का फल था कि जमदग्नि के आश्रम में पूर्ववत् सुख शान्ति विराजने लगी।

इस घटना के कुछ दिनों बाद एक दिन हैहयवंशाधिप राजा कार्तवीर्य जिसका दूसरा नाम सहस्रार्जुन था, आखेट के लिये वन में घूमता फिरता जमदग्नि के आश्रम में जा निकला। उस समय परशुराम अपने सहोदरों सहित वन में कन्द फल समिधा आदि लाने गये थे। अतः आश्रम में रेणुका और जमदग्नि को छोड़ और कोई नहीं था। प्राचीन काल के लोग विशेष कर ऋषि मुनि आजकल की तरह जिह्वालोलुप न थे। साथ ही अपने शरीर

की रक्षा और हिन्दूधर्म के एक अंग गो-सेवा के लिये एक अथवा अधिक गौएं सदा अपने पास रखा करते थे। परन्तप जमदग्नि के पास भी एक सुन्दर गौ थी जो बड़ी दुधार थी।

राजा को अपने आश्रम में आया देख जमदग्नि ने उसका यथोचित सत्कार किया और दूध आदि पिला कर उन्हें तृप्त किया। अनेक गौएं के रहते और अपार धन रत्न के अधीश्वर होने पर भी, कार्त्तवीर्य की नियत महर्षि की गौ पर डिग गई और उसने उस गौ को लेने की इच्छा प्रकट की। यह गौ एक प्रकार से जमदग्नि की अन्नदाता थी। वही सारे परिवार का पालन करती थी। उसके बिना उनके कष्टों की सीमा न रहती, अतः उन्होंने राजा को उस गौ का देना अस्वीकृत किया। परन्तु बालहठ, राजहठ और त्रिया हठ—ये तीन हठ जग में प्रसिद्ध हैं। अतः जमदग्नि के बार बार मना करने पर भी राजा ज़बरदस्ती बछड़े सहित उस गौ को खोल कर चल दिया।

आश्रम से राजा के चले जाने के कुछ ही क्षणों बाद भाइयों सहित परशुराम लौट कर आश्रम में पहुँचे। माता पिता के विषाद मय मुखमण्डल को देख, कारण पूँछा। परिवार का पालन करने वाली प्यारी गौ का कार्त्तवीर्य द्वारा अपहरण किये जाने का दुःखद संवाद सुन, तेजस्वी परशुराम, घायल सर्प की तरह क्रोध में भरे फुफकार मारते, कार्त्तवीर्य को उसके इस अत्याचार और अन्याय का प्रतिफल देने को, तुरन्त प्रस्थानित हुए। उधर क्रोध में भरे और हाथ में परसा लिये हुए परशुराम को आते देख, कार्त्तवीर्य ने सेना सुसज्जित कर उनका वीरोचित स्वागत किया। पर पितृआज्ञाकारी परशुराम ने सेना सहित अत्याचारी अर्जुन को यमपुर भेज दिया और बछड़ा सहित गौ ले आये। उस समय अर्जुन के लड़के भयभीत हो रणक्षेत्र से भाग गये।

गौ को पुनः अपने आश्रम में पा कर परशुराम की माता और पिता को बड़ा हर्ष हुआ। किन्तु जब जमदग्नि को यह मालूम हुआ कि एक गौ के पीछे परशुराम ने अर्जुन सहित अनेक मनुष्यों को काट डाला है, तब वे अप्रसन्न हो बोले :—

जमदग्नि—बेटा ! तुमने यह काम ठीक नहीं किया कि एक राजा की हत्या की। ब्राह्मणों में जहाँ अनेक पूज्य गुण हैं, वहाँ एक क्षमा भी है। यही क्यों क्षमा तो ब्राह्मणों की शोभा बढ़ाने वाला उनका एक सुन्दर आभूषण है। क्षमाशील ब्राह्मण को सब लोग पूज्य समझ उसका समादर करते हैं। क्षमाशील ब्राह्मण पर भगवान् भी प्रसन्न रहते हैं। तुमने राजा की हत्या कर बड़ा भारी पाप किया है। इस पाप का प्रायश्चित्त तुम करो और तपस्या करके भगवान् से अपने इस अपराध की क्षमा माँगो।

पितृ आज्ञाकारी परशुराम ने पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर तप करने के लिये प्रस्थान किया। एक वर्ष तक वे निरन्तर तीर्थों में घूमा किये। शास्त्र की आज्ञानुसार स्नान दान कर भगवान् को प्रसन्न किया और तत्पश्चात् वे आश्रम में लौट आये।

परशुराम जी ने तो क्रोध में भर सामने युद्ध में अर्जुन को मार एक अनर्थ किया ही था, किन्तु अर्जुन के पुत्रों ने तो उनसे भी बढ़ कर यह अनर्थ किया कि परशुराम जी की अनुपस्थिति में जमदग्नि के आश्रम पर आक्रमण किया। उस समय जमदग्नि अग्निकुण्ड के समीप बैठे ध्यान कर रहे थे। अर्जुन के उन पापात्मा पुत्रों ने रेणुका के बहुत गिड़गिड़ाने पर भी ध्यानमग्न जमदग्नि का सिर काट डाला और इस घोर आततायीपन पर प्रसन्न हो, हँसने लगे

उधर पति को मरा देख, बेचारी रेणुका छाती पीटती हुई, हा राम ! हा राम !! हा बेटा !!! कह कर उच्चस्वर से रोने लगी। दूर से माता का बोल सुन, परशुराम जी तुरन्त दौड़े आये। आश्रम में उन्होंने जो लीला देखी उससे उनके मन में दुःख और क्रोध दोनों एक साथ ही उपजे। पिता के मृतशरीर की रक्षा का काम अपने भाइयों को सौंप और परसा उठा, परशुराम जी उन नीच अर्जुन-कुमारों से बदला लेने के लिये आश्रम से निकले।

क्रोध में भरे विषधर की तरह फुफकारें छोड़ते, परशुराम जी, अर्जुन की राजधानी माहिष्मती में पहुँचे। हैहयवंश का परशुराम ने मूलोच्छेद करने को हैहयवंशधरों के सिरों को काट काट कर एक ढेर लगा दिया। तिस पर भी उनका क्रोध शान्त न हुआ। अर्जुन-कुमारों और अर्जुन के अन्याय एवं अत्याचारयुक्त इन आचरणों का उनके मन पर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि वे क्षत्रिय मात्र को अत्याचारी समझ उनके घोर शत्रु बन गये। यहाँ तक कि उन्होंने इस पृथिवी मण्डल को क्षत्रियशून्य कर डालने का सङ्कल्प किया। प्राचीन काल के ब्राह्मण स्वभावतः क्षमाशील हुआ करते थे, परन्तु यदि वे एक बार उत्तेजित हो जाते थे तो फिर उनके क्रोध की सीमा भी नहीं रहती थी। इसीसे प्राचीन काल के लोग ब्राह्मणों के क्रोध से बहुत डरा करते थे। परशुराम को यह बात स्मरण थी कि माता रेणुका ने पिता जमदग्नि के वियोग में इक्कीस बार अपनी छाती पीटी थी। अतः उन्होंने इक्कीस बार क्षत्रियों को मार कर, समन्त पञ्चक देश में उनके रक्त से पाँच कुण्ड भर दिये तब कहीं उनका क्रोध शान्त हुआ।

[illegible]

हुआ। परशुराम ने सरस्वती नदी में यज्ञान्त स्नान किये। जमदग्नि जी उठे और परशुराम से पूजे जा कर ऋषिमण्डल में जा विराजे। अब उनकी गणना सप्तर्षियों में की जाती है।

पुराणों के मतानुसार परशुराम जी अब तक महेन्द्र पर्वत पर निवास करते हैं। आगे के मन्वन्तर में ये वेदप्रचारक होंगे। भारतवर्ष के सात प्रसिद्ध पर्वतों में से महेन्द्र पर्वत भी एक है। यह पर्वतमाला उड़ीसा से गोंडवाना तक फैली हुई है। दूसरी ओर उत्तरी सरकार (Northern Sircar) तक उसकी सीमा है। गंजाम के समीपस्थ पर्वतश्रेणी को वहाँ वाले आज भी महेन्द्राचल के नाम से पुकारते हैं। पिता के परमभक्त, उनकी आज्ञा को वेद वाक्यवत् अकुण्ठित भाव से मानने वाले महा तेजस्वी एवं पराक्रमी परशुराम का निवास-निकेतन यही महेन्द्राचल है।

२२-विचित्र-वृक्ष

१ विष-वृक्ष

सुविशाल भारतमहासागर के पूर्व जावा नाम का एक टापू है। इसे लोग यवद्वीप भी कहते हैं। यवद्वीप सुन्दरता की खान है। ऐसा सुन्दर स्थान धरती पर अत्यन्त दुर्लभ है। परन्तु एक ही स्थान पर सारे सुखों और सौन्दर्यों को एकत्र करना परमेश्वर के नियम के विपरीत जान पड़ता है। हो न हो इसीलिये परमेश्वर ने यहाँ एक भयङ्कर वस्तु बना रक्खी है। इस भयङ्कर वस्तु का नाम है विषवृक्ष। यवद्वीप वाले इस भयङ्कर विषवृक्ष के मारे नौ दस मील के घेरे के भीतर और कोई वृक्ष या लता पैदा हो ही नहीं सकता। जङ्गल में कोई जीव नहीं रहने पाता। यदि उस घेरे के भीतर कोई जीव जन्तु अनजाने चला जाय तो तुरन्त मर

जाता है। इस वृक्ष से दिन रात एक प्रकार का हलाहल निकला करता है, जिससे उसके चारों ओर की हवा विषैली हो जाती है। यह हवा जिन पक्षियों के शरीर से छू जाती है, वे पक्षी तुरन्त मर जाते हैं।

प्राचीन काल में वहाँ के राजा जब किसी अपराधी को प्राण-दण्ड की आज्ञा देते थे, तब वह अपराधी उस पेड़ की पत्तियाँ तोड़ कर लाने को भेजा जाता था। परन्तु वृक्ष के पास पहुँचते ही वह मनुष्य मर जाता था। कहा जाता है इस वृक्ष के चारों ओर हड्डियों के ढेर लगे हैं। यह वृक्ष बहुत बड़ा है और देखने में बड़ा सुहावना जान पड़ता है। इसकी ऊँचाई लगभग पचास हाथ है और तने के पास की मोटाई पचास हाथ से कम नहीं है। तने के ऊपर अनेक लम्बी लम्बी शाखाएँ फैली हुई हैं। इसकी छाल का रंग सफेद है। छाल को काटने से एक प्रकार का सफेद रंग का [illegible] निकलता है। यह रस साँप के विष से भी बढ़ कर विषैला है। एक वैज्ञानिक डाक्टर बड़ी बड़ी हिकमत लड़ा कर

इस वृक्ष के समीप पहुँच सका था। उसने उस ज़हर को ला कर कई जानवरों के शरीर पर आज़माया। परीक्षा लेने पर जान पड़ा कि उस ज़हर से ७ मिनट में बंदर, १५ मिनट में बिल्ली, १ घंटे में कुत्ता और १८ घंटे में हाथी यमपुर के मेहमान बन जाते हैं। यव द्वीप में प्राचीन काल के राजा लोग तीक्ष्ण बाणों को इसीके विष में बुझा कर रखते थे, जिससे बैरी के शरीर में बाण घुस भर जाने ही से वह मृत्युदेव का निश्चय ही पाहुना बन जाता था। अंगरेज़ों ने बड़ी बड़ी कठिनाइयों से इस वृक्ष के पत्ते और छाल ले कर लंडन पहुँचाये थे और यहाँ के बड़े बड़े वैज्ञानिक पण्डितों ने उनके गुण अवगुणों पर विचार किया था। डाक्टरों का कथन है कि इससे जीवों का प्राणनाश तो होता ही है, किन्तु साथ ही इसमें अनेक दुष्कट रोगों के नाश करने की भी अद्भुत चमत्कारिक शक्ति है। वे कहते हैं साँप के काटे हुए रोगी को यदि इसका रस खिला दिया जाय तो सर्पविष हलका पड़ जाता है और दोनों विषों के योग से रोगी बच जाता है।

आह्नोस्त्र नाम का एक और विषवृक्ष है। इसका विष सब विषों से भयङ्कर होता है। इँगलैंड में किउ नाम का एक नगर है। वहाँ एक उद्भिद्विद्या विषयक उद्यान (बोटानिकल गार्डन) है। इसी उद्यान में आह्नोस्त्र नाम का विषवृक्ष एक समय लगा हुआ था। इस उद्यान के स्वामी मिस्टर [illegible] के हाथ की पीठ पर एक दिन इस वृक्ष का काँटा ज़रा सा छू गया था। इसका फल यह हुआ कि मिस्टर [illegible] मूर्च्छित हो कर गिर पड़े [illegible] हुई [illegible] में रक्त का संचार [illegible] [illegible] किसी प्रकार न मिलने नहीं पाया। इस पर डाक्टरों ने [illegible] परीक्षा से इस विष के असर का [illegible] [illegible] है कि [illegible] वृक्ष का विष वैसा भयानक [illegible] होता। काँटा न तो छिदा न उसमें खून भी

निकला। ज़रा सा छू जाने से स्मिथ साहब को जान के लाले पड़ गये। ऐसे विष वृक्ष का रखना बड़ी भारी जोखों का काम समझ स्मिथ साहब ने उसे जड़ से खुदवा डाला। तब से अफ्रीका वृक्ष इँगलैंड में रहा ही नहीं।

दक्षिण अमेरिका के पेरू प्रदेश में एक विलक्षण वृक्ष है। उसमें क्षुधा निवृत्ति करने की विलक्षण शक्ति है। बहुधा लोग कहा करते हैं कि एकी हर्र खाने से भूख बंद हो जाती है। किन्तु इस वृक्ष की पचास रत्ती छाल पानी में उबाल कर उस पानी को यदि कोई पी ले तो अड़तालीस घंटे के लिये मानों खाने पीने की आवश्यकता ही नहीं रही। तिस पर ख़ूबी यह कि शरीर में निर्बलता तिल भर भी नहीं आने पाती।

२ माँसभक्षी वृक्ष

अमेरिका और अफ़्रीका में एक जाति का वृक्ष होता है। वह डीलडौल में तो बड़ा नहीं होता किन्तु उसका प्रधान भक्ष्य मक्खियाँ और छोटे छोटे कीड़े हैं। इस वृक्ष में ऐसी मोहिनी शक्ति है कि इसके पास पहुँचते ही मक्खियाँ और छोटे छोटे कीड़े अपने आप इसके पत्तों पर गिर पड़ते हैं। गिरते ही पत्ता सिकुड़ कर बंद हो जाता है और उसमें निकले हुए रस में वह गिरा हुआ कीड़ा या मक्खी चिपट जाता है फिर उसमें उड़ने की या वहाँ से भागने की शक्ति नहीं रह जाती। उस रस के प्रभाव से वह कीड़ा गल कर पत्ते [illegible] जाता है। [illegible] के बदले यदि कोई कंकड़ा या अन्य कोई जड़ पदार्थ पत्ते पर गिरे तो पत्ता सिकुड़ कर उसे पकड़ तो तुरन्त लेगा पर उसे छोड़ भी तुरन्त ही देगा।

इसी जाति का एक और पेड़ होता है जो मक्खी [illegible] को पकड़ कर मार तो डालता है पर उसे खाता नहीं। इसके पत्ते

देखने में फूल के समान होते हैं और पत्तों के किनारे नुकीले और छोटे छोटे काँटों से भरे होते हैं। चूहा पकड़ने की कल की तरह ये पत्ते होते हैं। पत्तों को फूल समझ, भौंरा या मक्खी ज्योंही उन पर बैठीं कि पत्तों ने सिकुड़ कर अपने काँटों से उन्हें छेद दिया। फिर उनमें उड़ने की शक्ति नहीं रह जाती और वे मर जाती हैं।

उरियल नाम का एक पर्यटक अफरीका के किसी वन में शिकार खेलने गया। उसने एक हिरन पर गोली छोड़ी। हिरन भागा। साहब ने एक काफ़ी लड़के को उस हिरन के पीछे दौड़ाया। कुछ दूर लड़का गया भी, पर सहसा वह ज़ोर से रोने लगा। उसका रोना सुन साहब दौड़ कर उस ओर गये जिस ओर से लड़के के रोने का शब्द आ रहा था। वहाँ जा कर साहब ने देखा कि एक बड़ा वृक्ष है जिसकी डालियाँ बड़े ज़ोर से हिल रही हैं। साहब ने अनुमान से जान लिया कि लड़का उस पेड़ के नीचे दबा पड़ा है। उसे देखने ज्यों ही साहब उसकी ओर बढ़ने लगे त्योंही उन्होंने देखा कि डालियाँ हिलहिल कर मानों उन्हें भी पकड़ना चाहती हैं। यह देख साहब पीछे हटे और बंदूक भर भर कर वे उन पत्तों पर छोड़ने लगे। तब तो वृक्ष और भी अधिक वेग से हिलने लगा। फिर उरियल साहब ने छुरी से उस पेड़ ही को नष्ट कर डाला और नष्ट करने पर उन्होंने देखा कि उसकी शाखाओं के भीतर काफ़ी लड़का और हिरन इस प्रकार छिपे थे कि उनका निकालना असम्भव था।

———

२३—आत्मावलम्बन

यह एक ऐसा गुण है कि जिसके बिना मनुष्य की शोभा और शक्ति का विकाश नहीं होता। जो आत्मावलम्बी हैं, स्वच्छन्दता का

सुख वे ही उपभोग करते हैं। जो आत्मावलम्बी नहीं हैं वे मृत पुरुष के समान हैं। इस विषय पर अँगरेज़ी साहित्य में "सेल्फहैल्प" नाम का एक अच्छा निबंधग्रन्थ है। हिन्दी साहित्य में ऐसे ग्रन्थों का अभी अभाव है।

आत्म-अवलम्बन की महिमा योरप अमेरिका और जापान के प्रत्येक व्यक्ति के मन पर भली भाँति अङ्कित है। वहाँ पर शरीर में शक्ति रहते कोई भी परमुखापेक्षी बन कर अपना पेट पालना नहीं चाहता। वे लोग स्वयं आत्मावलम्बी बन कर अपना ही निर्वाह सुख स्वच्छन्दता पूर्वक नहीं करते, किन्तु अपनी उन्नति के साथ साथ अपने देश की उन्नति और अनेक परोपकार के कार्य भी करते हैं। जो लोग आत्मावलम्बी नहीं हैं, भले ही वे विद्वान् ही क्यों न हों, वे कुछ भी नहीं कर सकते। भारतवर्ष में तो आत्म-निर्भरता का मानों अभाव सा है। यहाँ के लोग अगणित वर्षों से पराश्रित रह कर दुःखमय जीवन व्यतीत करने के आदी हो गये हैं। इसी से इनकी नस नस में पराधीनता समा गई है।

जो आत्मावलम्बी और अध्यवसायी हैं, वे किसी भी दशा में हों, अवश्य अपनी यथेष्ट उन्नति कर लेते हैं। स्वामी रामतीर्थ जी महाराज ने एक बार कहा था—"चीन में एक विद्यार्थी बड़ी दीन-हीन दशा में था। पढ़ने के लिये उसे रात को तेल भी नहीं मिलता था वह जुगनुओं को एकत्र कर उन्हें एक पतले कपड़े में बाँध कर [illegible] और उनके प्रकाश में [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

जब मनुष्य किसी बात का पात्र या अधिकारी हो जाता है तब उसका अधिकार उसको स्वयं ही ढूँढ़ लेता है। जहाँ पर अँगीठी में आग जल रही है, आक्सीजन खिंच कर स्वयं उसके पास आ जायगा। जो पत्थर दीवार में लगाये जाने के योग्य हैं वह दूकान में कब पड़े रहने पावेंगे। किसी फारसी के कवि ने कहा है "किसी पद की खोज में समय नष्ट मत करो। अपने को योग्य बनाने की चिन्ता करो।" निस्सन्देह यदि हम में योग्यता है तो हम उस पद तक अवश्य पहुँच जावेंगे। अँगरेज़ी में भी कहावत है कि पहले तुम अधिकारी बनो फिर चाहना करो। क्योंकि यदि हम योग्य होंगे तो हम निरन्तर चेष्टा करने पर अवश्य एक दिन अपने स्वत्व प्राप्त कर लेंगे और यदि हम अयोग्य होंगे तो हमारे कहने या करने का कुछ फल न होगा।

स्वामी रामतीर्थ ने अपने व्याख्यान में यह भी कहा था कि "जापानियों ने तीन तीन सौ और चार चार सौ वर्ष के चीड़ और देवदारु के वृक्ष ऐसे उपजा रखे हैं जो लंबाई में केवल एक एक बालिश्त के बराबर या कुछ ही अधिक ऊँचे हैं। आप विचारें कि क्या कारण है कि इन वृक्षों को वे शताब्दियों तक बढ़ने से रोक देते हैं। जिज्ञासा करने पर यह मालूम हुआ है कि ये लोग इन वृक्षों के पत्ते और टहनियों को बिल्कुल नहीं छेड़ते, किन्तु जड़ को काटते रहते हैं। ये जड़ों को बढ़ने नहीं देते। प्रकृति का यह नियम है कि जब जड़ ही नीचे नहीं जायगी, तब वृक्ष ऊपर भी नहीं बढ़ेगा। ऊपर या नीचे का या भीतर और बाहिर का इस प्रकार का सम्बन्ध है कि जो लोग ऊपर को बढ़ना चाहते हैं, संसार में फलना फूलना चाहते हैं, इन्हें नीचे अपने भीतर आत्मा में जड़ें बढ़ाना चाहिये। यदि भीतर जड़ें नहीं बढ़ेंगी तो वृक्ष ऊपर भी न फलेगा। इसी प्रकार जिस मनुष्य के अन्तरात्मा में आत्म निर्भ-

रता नहीं, वह पुरुष कभी उन्नत हो ही नहीं सकता। आत्मनिग्रह ही आत्म-निर्भरता का मूल है। मन और इन्द्रियों की प्रेरणाओं के वश में रखना ही धर्म का मुख्य आधार माना गया है। आत्म-निग्रह की विशेषता ही पुरुष के गुण और धर्म की उत्तम सीमा मानी गई है। उत्तेजना के झपेटे में न आना, घड़ी घड़ी में उठने वाली मन की तरङ्गों के भँवरों में न पड़ना, बल्कि, मन को एक चञ्चल तुरङ्ग की तरह कड़ी कटीली लगाम लगा कर अपने वश में रखना ही आत्मनिर्भरता की सीढ़ी पर पदार्पण करना है।

आत्म-निर्भरता पुरुषार्थी पुरुषों की आराध्य देवी है। इसकी आराधना करके भारतवर्ष में बड़े बड़े कर्मवीरों ने ख्याति पाई है। योरप में तो ऐसे पुरुषों का पूँछना ही क्या है। आज कल हम लोग ऊँची सेवावृत्ति मिलने ही को उन्नति की चरम सीमा समझ लेते हैं, किन्तु हमारे पूर्वज जीवन की स्वतंत्रता ही को वास्तविक सुख का आधार बतला गये हैं। धर्मशास्त्रों में सेवावृत्ति को श्वान-वृत्ति कहा है। जब हम इस श्वानवृत्ति ही को अपने जीवन का लक्ष्य बनाये हुए हैं, तब विचारने की बात है कि हम अपने असली लक्ष्य से कितने नीचे गिर गये हैं। आजकल सर्वथा हम आत्म-निर्भरता को खो चुके हैं। आत्म-निर्भरता [illegible] जाति की पहिचान है, उनके जीवन में [illegible] का [illegible] का अन्धाधुन्ध उन्नति। आत्म-[illegible] में [illegible] का [illegible] अन्धाधुन्ध बढ़ी हुई है। आप [illegible] स्वत्व का पूर्ण [illegible] [illegible] है

[illegible]

[illegible]

[illegible]

न कर्मवीरों को। फिर क्यों नहीं कर्मवीर बन कर नामवरी के साथ मरना तू पसंद करता?"

२४—शिक्षा का उद्देश्य

मनुष्य जब बालक के रूप में इस संसार में जन्मग्रहण करता है तब वह सब प्रकार से अज्ञानावस्था में रहा करता है। वह दूसरों से बात बात में शिक्षा ग्रहण करता है, क्योंकि उसे शिक्षा की आवश्यकता होती है। अतः जिस दिन से मनुष्य इस संसार में पैर रखता है, उसकी शिक्षा का श्रीगणेश उसी दिन से होता है और जब तक वह इस संसार में रहता है, उसकी शिक्षा का क्रम जारी रहता है। हमने चलना फिरना, बोलना चालना, खाना पीना तक दूसरों से सीख कर जाना है। साथ ही यह भी बात है कि जितना अधिक जो सीखता है उसका जीवन उतना ही अधिक उपयोगी होता जाता है। इसी उद्देश्य से तो लोग स्कूल और कालेजों में बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ और कष्टों को उठा कर भी शिक्षा प्राप्त किया करते हैं। निस्सन्देह शिक्षा प्राप्त करने में हमें नाना प्रकार के कष्ट सहन करने पड़ते हैं परन्तु शिक्षा ही तो हमें जीवन के आनन्द की ओर ले जाने वाले पथ को प्रशस्त कर देती है।

आनन्द प्राप्त करने की कामना रखने वालों के लिये शिक्षा प्राप्त करना परमावश्यक है क्योंकि शिक्षा द्वारा ही हम अपनी स्थिति का यथायोग्य [illegible] [illegible] ज्ञान प्राप्त करते हैं। शिक्षा का अर्थ [illegible] [illegible] विद्या पुस्तकों का अध्ययन पढ़ना समझ लेते हैं, [illegible] भूलते हैं क्योंकि हम अपने माता पिता या मित्रों से अनेक प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर लेने पर भी हमारे लिये बहुत सी बात सीखने को बना ही रहता है।

जो शिक्षा प्राप्त हैं, या शिक्षित हैं, वे अवश्य ही अपने समाज के भूषण हैं, परन्तु उनका यह कर्त्तव्य नहीं कि वे उन लोगों से जो अशिक्षित हैं घृणा करें। पढ़ना लिखना, विद्या प्राप्त करने का साधन है। अध्ययन को उचित प्रकार से व्यवहार में लाना चाहिये। एक अंगरेज़ विद्वान् का कथन है कि "हमें अपने अध्ययन से पलंग की तरह आराम का काम न लेना चाहिये; और न उसको एक ऊँची मीनार ही बनाना चाहिये जहाँ से हम अन्य लोगों को नीचे खड़ा देखें। अपने अध्ययन को न तो दूसरों से लड़ने को किला बनाओ और न सौदा सट्टा करने की दूकान, किन्तु अपने अध्ययन को भगवान् की महिमा का कोष बनाओ और उससे अपने जीवन का सुधार करो।"

एक बार लाला लाजपति राय ने अपने व्याख्यान में देश के शिक्षितों को सम्बोधन कर कहा था—"भाइयो! अपने अशिक्षित भाइयों को घृणा की दृष्टि से न देख कर उन्हें शिक्षित बनाने का जितना कुछ प्रयत्न तुम कर सकते हो [illegible] भाव से करो।" [illegible] ने भी कहा है— वे ही मनुष्य सर्वसाधारण की सब से अधिक सेवा करने वाले हैं [illegible] ऊँचे मकान न बनवा कर लोगों के आत्मा को ऊँचा [illegible] अच्छी बात है कि महान पुरुष और महात्मा [illegible] पराजित न हों। क्षुद्र पुरुष [illegible] प्रधान हो कर ऊँचे [illegible] अच्छा नहीं।"

अनेक लोग [illegible] समझ कर [illegible] विद्यालय ही उनकी शिक्षा के आरम्भ और समाप्ति [illegible] है परन्तु विद्वानों का मत है [illegible] शिक्षा का काम विद्या[illegible] समाप्त नहीं होता। शिक्षा [illegible] ऐसी वस्तु है कि जीवन के अन्त तक इसे जारी रखना चाहिये। जर्मन आदि देशों में [illegible] मिलते हैं

वृद्धावस्था में भी अन्य देशों की भाषायें सीखना आरम्भ करते हैं। शिक्षा बड़े महत्व की वस्तु है। क्योंकि यही हमें युवावस्था, वृद्धावस्था और सांसारिक व्यवहार के लिये तैयार करती है। शिक्षा हमें जीवन और मरण का तत्व बता कर हमें कल्याण के पथ पर लाती है।

बहुधा लोग समझा करते हैं कि शिक्षा केवल इस लिये प्राप्त करनी आवश्यक है जिससे हमें रुपये मिलने लगें। आज कल इसी विचार के लोगों की संख्या भारतवर्ष में अधिक है। ये लोग शिक्षा के वास्तविक आनन्द से सर्वथा वञ्चित रहते हैं। यह हम मानते हैं कि रुपया कमाना भी एक आवश्यक कार्य है और यह भी शिक्षा से प्राप्त होता है, किन्तु शिक्षा का अन्तिम ध्येय इसे बना लेना बड़ी भूल का काम है। शिक्षा प्राप्त कर धनोपार्जन अवश्य करना चाहिये; किन्तु शिक्षा के परिणाम स्वरूप, स्वयं आनन्द प्राप्त करते हुए दूसरों की सुख समृद्धि को भी बढ़ाना उचित है। इसीमें मनुष्य जन्म की शोभा है।

ऐसे भी लोग हैं जो धन को सर्वोपरि माने बैठे हैं। कोई विद्या को सर्वोपरि और धन को उसके बाद समझते हैं। कोई रुपये को बड़ा और विद्या को लघु समझते हैं। जिन लोगों ने विद्या को धन से बड़ा मान रक्खा है, वे पण्डित हैं। जिन्होंने विद्या को सर्वस्व मान रक्खा है वे न्यायवेत्ता हैं। जिन्होंने रुपये को विद्या के ऊपर मान है और विद्या को भी कुछ माना है वे साधारण मनुष्य हैं परन्तु जिन लोगों ने रुपये ही को जीवन का लक्ष्य और अपना सर्वस्व समझ रक्खा है वे बुद्धिमान कभी नहीं कहे जा सकते। दुनिया में लोगों को पैसे धनाढ्यों की खुशामद करते पावोगे, उनको वैभव भी अधिक देख पड़ेगा, परन्तु शिक्षाहीन होने से अथवा विद्या देवी का आराधन न करने से वे जीते हुए भी

मृतक के समान हैं। योरप और अमेरिका के बड़े बड़े कोट्याधीशों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि विद्या रुपये से उतनी ही बड़ी है, जितनी माता अपनी सन्तान से बड़ी होती है। प्रत्येक धनाढ्य को समझ लेना चाहिये कि शिक्षा का विस्तार करने से अच्छा उसके लिये अन्य कोई भी काम नहीं है।

बच्चों को शिक्षित बनाने के लिये आवश्यकता है कि उनके मस्तिष्क में कोरी ज्ञान की बातें ही न भरी जाँय, प्रत्युत उनमें स्वयं विचार करने की बान भी डालनी चाहिये। ऐसा करने ही से बच्चों को विद्या की चाट लग सकती है। जैसे जैसे उनकी विद्या बढ़ेगी वैसे ही वैसे उन्हें अपनी ज्ञान-पिपासा मिटने की उत्सुकता बढ़ती जायगी। स्मरण रखना चाहिये केवल पुस्तक को पढ़ डालना ही लाभकारी नहीं हुआ करता। हर्बर्टस्पेंसर ने लिखा है :—

"पुस्तक, शिक्षा प्राप्त करने का गौण साधन है; प्रधान साधन नहीं। पुस्तकों से कुछ सीखना मानों दूसरों की आँखों से देखना है। विषय का विचार और मनन ही हमारी उन्नति का मार्ग है। इसमे विचारवान् पुरुष चाहे थोड़ी ही पुस्तकें पढ़े, परन्तु वह उनके विषयों को अपना बना लेता है।"

इसी से बड़े बड़े तत्त्ववेत्ता लोगों के पास बहुधा अल्प संख्यक पुस्तकें देखी गई हैं।

शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिससे हम अपने स्वार्थ एवं परमार्थ दोनों को भली भाँति समझ कर कल्याण-पथ पर चलने लग जायँ।

स्वदेश [illegible]

२५—मनुष्य जाति

मनुष्य जाति की उत्पत्ति के आरम्भ काल का ठीक ठीक निश्चय अब तक नहीं हो सका; और न आगे ही होने की कुछ सम्भावना है। इस विषय में लोगों ने अनुमान के घोड़े दौड़ाने के सिवाय आज तक और कुछ भी नहीं किया। अतएव हम भी इस विषय को सुन मनुष्य जाति के आरम्भिक काल सम्बन्धी वृत्तान्त को लिखना आरम्भ करते हैं।

आरम्भ काल में मनुष्य जाति की दशा ऐसी न थी जैसी हम तुम आजकल देख रहे हैं। आदि युग में लोग वनों में रहते थे और पेड़ों की छाल और पशुओं का चाम सरों की जगह पहनते ओढ़ते थे। ज्यों ज्यों सभ्यता बढ़ती गई, त्यों त्यों मनुष्य जाति धर्मधारिणी व शिक्षित होती गई। उस ज़माने में मनुष्य पृथिवी के पदार्थों का हाल बहुत कम जानते थे। नाज का बोना, अच्छी खाद डालना, खेती को सींचना, हानिकारी घास को विरवों से अलहदा करना यानी निराना और फिर उसको उपयोगी कार्यों में उपयोग करना—ये समस्त उपयोगी विषय बहुत पीछे से मनुष्य जाति को अवगत हुए हैं। पहले तो मनुष्य को उन पदार्थों की खोज करनी पड़ी जो कि शरीरधारण के लिये परमावश्यक थीं। जैसे खाने के लिये भोजन, पीने के लिये जल, और मनुष्यों को मार कर खा जाने वाले जन्तुओं से बचने के लिये रहने के घर तथा उपाय।

आदि युग के मनुष्य केवल वन्य फल मूल आदि ही खाते थे। जब उसने अन्य जीवों को मांस खाते देखा, तब उसकी भी रुचि मांस खाने की ओर झुकी। किन्तु बिना शस्त्र के जानवर कैसे मार काट जा सकते थे, अतएव प्रथम उसने शस्त्र

निर्माण की ओर ध्यान दिया और लकड़ी पत्थर आदि के टुकड़ों को घिस कर पैना किया। और उनसे शस्त्र का काम लिया। गोल कंकड़ों को काट छाँट कर और उनको हथौड़े के आकार का बना कर उससे भी शस्त्र का काम लिया। कभी कभी ये शस्त्र अब भी कहीं कहीं ज़मीन के नीचे गड़े हुए मिल जाया करते हैं। धीरे धीरे मनुष्य ने शस्त्र-निर्माण-कला में आज ऐसी उन्नति की है कि जिसका कहना ही क्या है। पुराने समय के शस्त्र गुफाओं में प्रायः मिलने से अनुमान किया जाता है कि उस ज़माने के लोगों के रहने के स्थान या घर गुफाएँ ही थीं। उन शस्त्रों से वे अपनी और अपने आश्रित जनों की रक्षा ही नहीं करते थे, किन्तु उनसे वे बड़े बड़े जन्तुओं को मार कर अपना उदर पालन भी करते थे। पशुओं को मार कर वे उनका केवल मांस ही न खाते थे, बल्कि उनके चमड़ों के वस्त्र और हड्डियों के आभूषण तथा हथियार भी बनाते थे और बड़े शौक से उनको धारण करते थे।

ज्यों ज्यों आवश्यकतायें बढ़ती गईं त्यों त्यों मनुष्य युक्ति द्वारा उन आवश्यकताओं [illegible] जान पड़ने लगे पर मनुष्य अपने [illegible] था। पीछे उसने [illegible] किया। [illegible] भय से [illegible] आग को उत्पन्न कर मनुष्य ने [illegible] भूनना और उबालना आरम्भ किया [illegible] भूनने के [illegible] ज़मीन के [illegible] खोद उसमें [illegible] [illegible] बनाई गई।

इसी प्रकार गुफाओं का रहना छोड़ मनुष्य ने मिट्टी की दीवारें चारों तरफ बना कर वृक्षों की लकड़ियों से उसको छा कर उसमें रहना आरम्भ किया। जब कभी उन्हें पत्थर की पटरियाँ मिल जाती थीं, तब उन्हें एक दूसरे के ऊपर रख कर वे छत पाट लेते थे। इसी प्रकार वे फिर झोपड़े बनाने लगे और अब तो मनुष्य ने भवन-निर्माण-कला में जैसी उन्नति की है—सो हम सब देखते ही हैं।

धीरे धीरे बुद्धिमान् मनुष्य धातुओं का भी उपयोग उपयोगी कामों में करने लगा। जब पत्थर और काठ के शस्त्रों से काम चलना कठिन जान पड़ा, तब उन लोगों ने कठिन धातु के शस्त्र बनाना आरम्भ किया। इस कार्य में जब उनको आशातीत सफलता प्राप्त हुई तब उन्होंने कितनी ही प्रकार की धातुओं को ढूँढ़ निकाला। फिर उन धातुओं को मिला कर कई प्रकार की नयी धातुओं का आविष्कार कर उन लोगों ने मनुष्य जाति का अमित हितसाधन किया। उन धातुओं को गला कर उनसे तरह तरह के बरतन एवं शस्त्र भी उन लोगों ने बनाना आरम्भ किया।

फल फूल मांसादि का भोजन करते हुए प्राचीन काल के लोग घूमा फिरा करते थे। एक जगह ठहरते न थे। धीरे धीरे वे लोग खेती कर [illegible] एक जगह बसने लगे। इसी दशा में उन लोगों ने देखा कि अनेक पशु [illegible] तो उनके बड़े काम के हैं, अतः वे उन पशुओं को [illegible] लगे। जहाँ वे उन पशुओं के लिये चारा [illegible] वहीं जा कर रहने लगते थे। [illegible] औज़ार बनाये।

इस प्रकार मानव जाति ने धीरे धीरे हर प्रकार से अपनी उन्नति के काम कर अनेक नये नये पदार्थों का आविष्कार किया।

यह कोई नहीं कह सकता कि मनुष्य ने बोलना कैसे सीखा। तब हाँ यह कोई आश्चर्य का प्रश्न नहीं है। क्योंकि जिस उदार परमात्मा ने मनुष्य को बोलने की शक्ति दी है, उसीने उसको अपने मन के भावों को प्रकट करने की भी शक्ति दी। अनुमान है कि प्रथम मनुष्य सङ्केतों द्वारा अपने मन के भाव प्रकट करता रहा होगा। जैसे सिर हिलाने से नहीं, सिर झुकाने से हाँ, कनपटी पर हाथ रखने से सोना, पेट पर हाथ रखने से भूख, चिह्न बना कर मुँह में लगाने से प्यास, अँगुलियों को मुँह में लगाने से खाना, सिर पर हाथ रखने से सिरदर्द, इत्यादि प्रकार से प्रकट करते रहे होंगे। इस प्रकार अपने मन के भावों को प्रकट करने में भी जब लोगों को कठिनता होने लगी तब वे ध्वनि के अनुसार शब्द बनाने लगे। जैसे सुअर, उल्लू, तोता आदि के नाम उन्हींकी बोलियों के अनुसार रखे गये थे। पर जिन शब्दों से भाषा बनी है, उनके आगे ऐसे शब्दों की संख्या नाम मात्र के लिये ही है। भाषा-भाण्डार में अन्य अन्य शब्दों का प्रयोग कदाचित् इस प्रकार से हुआ हो कि जब एक स्थान पर निवाह होने की सम्भावना न देख पड़ी तब मनुष्य जहाँ तहाँ जा कर बसने लगे। जब तक मनुष्य एकत्र रहे तब तक तो इशारों द्वारा उनका काम निकलता रहा परन्तु दूर दूर स्थानों में रहने के कारण उन्हें अपने मन के भाव प्रकट करने के लिये लिखने की प्रथा का [illegible] पत्थर पे [illegible] या वृक्ष की छाल पर [illegible] मान- [illegible] भाव इसके पर [illegible] उनका काम न निकला [illegible] उनके लिये पृथक् सङ्केत [illegible] कहलाए। [illegible] प्रकार [illegible] की [illegible] जाते हैं

अनेक विद्वानों का मत है कि मनुष्य जाति का आदि आवास स्थान एशिया का मध्य भाग है। यहाँ ज्यों ज्यों मनुष्यों की संख्या बढ़ती गई और रहने के स्थान का सङ्कोच होता गया वैसे ही वैसे लोग इधर उधर फैलते चले गये। धीरे धीरे कोई जापान, कोई योरप, कोई अमेरिका और कोई ईरान के अधिवासी बन गये। सारांश यह कि एशिया के मध्य भूभाग से मनुष्य जाति सारी पृथिवी पर फैली है। फिर अनेकानेक देशों के जलवायु की विभिन्नता के कारण वहाँ के निवासियों के रूप रंग, रहन सहन तथा बोलचाल आदि में अन्तर पड़ गया।

प्राचीन समय के अक्षर भाषा, रीति, भाँति, एवं आचार विचारादि की खोज करने और उस पर विचार करने से यह भली भाँति सिद्ध होता है कि प्राचीन काल से उत्तरोत्तर सभ्यता बढ़ती ही चली आ रही है और इसी भाँति बढ़ती चली जायेगी।

—श्रीदर्पण

Print by Ramzan Ali Shah at the National Press, Allahabad

पद्य-पाठ-माला

चौथा भाग

१—श्रीजार्ज वन्दना

[पण्डित श्रीधर पाठक रचित]

१ जय जय पंचम जार्ज भार्ज मवनीस हमारे।
जयतु सेतुकुल केतु जयति इङ्गलैंड उज्यारे॥
जयति मनुज कुल दया द्रवित दुखियन दुख-भञ्जन।
जय भारत निज प्रजा प्रनय भाजन जन-रंजन॥
जय ब्रिटिश पुरातन वीरता विदित हनोवर वंसधर।
जय विक्टोर्या प्रिय तनुज श्री ऐडवर्ड नृप-तनयवर॥

२ जय उनीस दस एक, सुभग अभिसेक सम्वत्सर।
अनित अनूप अनन्द जून, जय जून दिसम्बर॥
जय! जय राजसमाज आज सजि साज इकत्रित।
उमड्यों प्रबल उमग स्रोत, प्रभु अभिनन्दन हित॥
लखि लन्दन देखि नन्दन लज्जित इन्द्रप्रस्थ लखि इन्द्रपुरि
[illegible] सुरनिमर्ग नगर [illegible]

३ [illegible] सफल [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

सो आगत है तुम हाँ महो ! इन नैनन मग पग धरहु ।
लहि स्वागत पूरन प्रनय को अपनावन अपने करहु ॥

४ धंग विभाग[1] मिटाय अमिट अनुराग बढ़ायो ।
घर घर सुख संतोष सुधा वारिद बरसायो ॥
सैनिक जन सनमान प्रथा कछु उन्नत कीनो ।
दैसिनु पदक विसेस प्राप्ति हित क्षमता दीनो ॥
जय सब महँ सम ममता प्रनय प्रगटि प्रजामन मुग्धकर ।
जय सतत सुगम सासन निरत जग प्रसिद्ध नीतिश्वर ॥

५ जय विश्रुत विद्वान मान मर्यादा कारक ।
पदधारिन पदवृत्ति दान बुधि नेम प्रचारक ॥
जय दिल्ली निज नवल राजधानी निर्धारित ।
जयति सहस शुभकाज सुजस बल्ली विस्तारित ॥
जय सुरथल सम भूतल कियो सकल सुलभ संपति भरित
जय जलपति थलपति व्योमपति, जयति सोम सुरपतिचरित ।

६ जाउ ! तुम्हारे राज मार्तंमा कबहूँ न अथवत ।
मानहु इच्छा करत काज, दिन सों रहै चितवत ॥
सुनियत सूरज बंस रह्यो रजपूतन माहों ।
पै प्रताप रवि कियो राज उनके इमि नाहीं ॥
जय रवि ससि गुनगुम्फित सुदृढ सोहत सुगम सुराज थिति
जय कलकीरति जय चन्द्रिका छिटकि, छटा छहरति छिति ।

७ जय जय पुनि सम्राट प्रिया महरानी मेरी ।
सुन्दर तन सुरबाल, सुघर गुन माल सुमेरी ॥
रहो ललकि जिहि लखन प्रजा करि चाह घनेरी ।
सुचित भई अवलोकि प्रेममय मूरति तेरी ॥

एकाएक अनेक कल्पना उठी भयानक।
कियो सुनावन भूप "भयो यह कहा अचानक॥

३४ यह अलकुल क्यों होत, कहा अब अनरथ ह्वै है।
गयो कहा रवि दीप आदि विधना अब ग्वै है॥
छूट्यो राज समाज भए पुनि दास पराए।
ऐसो महिषी हू को हत दासी करि पाए॥

३५ सो अबोध बालक हूँ को विलपत संग भेज्यो।
इक मरिबे को छोड़ि कहा जो नाहिं अँगेज्यो"॥
फरकी बाईं आँख बहुरि सोचत बालक कों।
सो यह धुनि सुनि परी परम दृढ़ व्रतपालक कों॥

३६ "सावधान अब बस परिच्छा अन्तिम है यह।
डिगन न पावै सत्य हरिच्छा अन्तिम है यह॥
ऐसो कठिन कलेस सह्यो कोउ नृप नाहीं।
अपनेहि कैसे धैर्य धरो याहू दुख माहीं॥

३७ तब पुरुषा इक्ष्वाकु आदि सब नभ में ठाढ़े।
सजल नैन धरकत हिय सुन इहि अवसर गाढ़े॥
संसय संका सोक सोच संकोच समाये।
साँस रोकि तब मुख निरखत बिन पलक गिराये॥

३८ देखहु तिनके सीस होन अवनत नहिं पावैं।
ऐसो [illegible] आचरहु सकल जग जन जस गावैं॥"
[illegible] सुनि नरहु [illegible] चारहु दिसि हेरो।
[illegible] कुसमय [illegible] दिन सों इमि टेरो॥

३९ [illegible] तब यह निरख्यो
[illegible]
[illegible]

हाय हमैं सब याहू सौं माँगन कर परि है।
पै याके सौंहू कैसे यह बात निकरि है॥"

५२ पुनि भूपति का ध्यान गयो ताके रोदन पर।
बिलखि बिलखि इमि भाषि सीस धुनि मुख जोवन पर॥
"पुत्र! तोहि लखि भाखत है सब गुनि औ पण्डित।
है है यह महाराज भोगि है आयु अखण्डित॥

५३ तिनके सो सब वाक्य हाय प्रतिकूल लखाये।
पूजा पाठ दान जप तप सब वृथा जनाये॥
तब पितु को दृढ़ सत्य अरहू कछु काम न आयो।
बालपनेहिं मैं मरे यथाविधि कफन न पायो॥"

५४ यह सुनि औरै भये भाव सब भूप हृदय के।
लगे दृगन मैं फिरन रूप संसय मद भय के॥
घड़ी ध्यान पै आनि पूर्व घटना सम ह्वै है।
हिचकिचात से लगे कछुक सब[1] की दिसि ज्यौं ज्यौं॥

५५ एतहिं मैं रोवत रोवत सो बिलखि पुकारी।
हाय आज पूरी कौसिक सब आस तिहारी॥
यह सुनि एकाएक भई धक सौं नृप छाती।
मरी मराई तुरत माहिं लागी जनु काती॥

५६ धीरज छुट्यौ धधाइ धूम दुख को घन छायो।
भयो महा अँधेर न हित अनहित दरसायो॥
बिबिध सुनायन सदा-सम-बेधक तिय लागी।
[illegible] पुत्र 'हा रोहिताश्व!' कहि रोवन लागी॥

५७ हाय नयो है कहा हमैं यह ज्ञान न आयो।
[illegible] पुत्रहि अब लौं नाहि [illegible]॥

[1] [illegible]

हरे! हरे यह कहा बात हम अनुचित ठानी।
कहा हमैं अधिकार भई जब देह बिरानी॥

६४ जो हम तजियो पाल होइ मति-भ्रम बिसारयो।
हाय आइ कैसे यह मनसा पाप निवारयो॥
दुख सों गई हाय ऐसो ह्वै मति मतवारी।
अन्तरजामी नाथ छमहु यह चूक हमारी॥

६५ अब तो हम हैं दास डोम के आज्ञाकारी।
रोहिताश्व नहिं पुत्र न सैब्या नारि हमारी॥
चलैं स्वामि के काज माहिं दृढ़ ह्वै चित लावैं।
लेहिं कफन को दान बेग नहिं बिलँब लगावैं॥

६६ यह निरधारि बिचारि फारि हिय पीर महा करि।
उतरि आइ रानी पाछे ठमके थर थर करि॥
सुन्यो बहुरि ताको बिलाप अति बिकल करैया।
"हाय बत्स! अब उठौ हमैं टेरौ कहि मैया॥

६७ हाय हाय जाके हित अब हम असन बने हैं।
जाको मुख की धूरि पोंछि के अङ्क लगे हैं॥
अब जाके अभिमान बिपति हू मैं सुख मानैं।
दासी हू ह्वै रानिन सों निज को बढ़ि जानैं॥

६८ हाय बत्स! तुम बिन अब बस जीवन नहिं रैहै।
ताको छिन इहिं ठाम प्रान काहू बिधि दैहै॥
[illegible] मैं आइ गए [illegible] मरि जैहै।
हैं [illegible] मैं [illegible] है॥

यों कहि उठि अकुलाइ चह्यो धावन ज्यों रानी।
त्यों [illegible] कहि [illegible] बोले नृप बानी॥

"बेचि देह दासी है तब तौ धर्म सम्हारयो।
अब अधरम क्यों करति कहा यह हृदय विचारयो॥
१० या तन पै अधिकार कहा तुमको सोचो छिन।
जान बूझ जो मरन चलो स्वामी आयसु बिन॥"
यह सुनि ह्वै चैतन्य महारानी मन मान्यो।
"ऐसे कुसमय माहिं कौन हित मम पहचान्यो॥

११ साँचहि अनरथ होन चहत हो यह अति भारी।
धन्य धर्मवक्ता सो जो नहिं बाँह उबारी॥
हमैं कौन अधिकार रह्यो अब प्रान तजन को।
सोचत और उपाव न दुख सों दूर भगन को॥

१२ तो छाती धरि बज्र लोक आचार सम्हारैं।
जिन कर पाल्यो तिन कर हा हा काहि पुकारैं॥"
इहि विधि करत विलाप काठ चुनि चिता बनाई।
धाइ मारि हैं मृतक देहि ताके ढिग ल्याई॥

१३ तब नर बरबस रोकि आँसु सोहैं बढ़ि आये।
भामिनि [illegible] धारि ओर ये शब्द सुनाये॥
[illegible] मृतक फुकै ना।
[illegible] कर दैना।

[illegible]

पै यह वृथा प्रशंसा हूँ सों होत कहा फल।
जाति परत सब सात्र आदि अब तौ मिथ्या छल॥

७६ निस्सन्देह सकल सुर महिसुर स्वारथ रत अति।
ना तद ऐसे धर्मों को कैसे ऐसी गति॥"
यह सुनि अवननि धारि हाथ भूपति तिहिं टोक्यो।
"हरे हरे! यह कहत कहा तुम" यो कहि रोक्यो॥

७७ सूर्यवंस की वधू चन्द्रकुल की है कन्या।
मुखसों काढ़ति हाय कहा यह बात अधन्या॥
वेद ब्रह्म ब्राह्मण सुर सकल सत्य जिय जानौ।
दोष आपने कर्महिं को निश्चय करि मानौ॥

७८ मुख सों ऐसी बात भूलि फिरि नाहिं निकारौ।
होत विलम्ब है हमैं कफन करि क्रिया पधारौ॥
सुनि यह अति दृढ़ बचन महिषि निज नाथहिं जान्यो।
कछु सुभाय कछु स्वर कछु आकृत सों पहिचान्यो॥

७९ परी पाँय पर धाइ फूटि पुनि रोवन लागी।
औरहु भई अधीर अधिक आरत जिय जागी॥
कह्यो दुखभ "हा नाथ! हमैं ऐसो बिसरायो।
कहाँ हुते अब लौं कबहूँ नहिं बदन दिखायो॥

८० हाय आपने प्रिय सुत की यह दशा निहारी।
टूटि गई [illegible] [illegible] कहा [illegible]॥
[illegible] भूपति [illegible] [illegible] अनुमानो
[illegible] [illegible] लखायो।

८१ [illegible] [illegible] मन [illegible]।
[illegible] अवसर जान [illegible]।

कोउ इत उत तें आनि यहूँ पहिचानि जु लै हैं।
इक लज्जा बचि गई अहै सोऊ चलि जै हैं।

८२ चली हमें दै कफन क्रिया करि भौन पधारी।
सुनौ बीरपती हैं धीरज नाहिं बिसारौ॥
यह सुनि शैव्या कह्यौ बिलखि अतिसय मन माँही।
"नाथ! हमारे पास हुतौ वस्तर कोउ नाहीं॥

८३ अंचल फारि लपेटि मृतक फूंकन ल्याई हैं।
हा! हा! ऐसी दूर बिना चादर आई हैं॥
दीन्हें कफ्फन फारि देखहु सब अंग खुलत हैं।
हाय! चक्रवर्ती का सुत बिन कफन फुकत है"॥

८४ कह्यो भूप "हम करहिं कहा हैं दास पराये।
फुकन देन नहिं सकत मृतक बिन कर चुकवाये॥
ऐसे ही अवसर में पालन धर्म कर्म है।
महा बिपति में रहै धैर्य सोई ललाम है॥

८५ देखि देहि हूँ जेहि सत्यहि राख्यो मन ल्याओ।
एक टूक कपड़ा पै! तेहि जनि आज छुड़ाओ॥
फाड़ि कफन तें अर्ध बसन कर बेगि चुकाओ।
देखो चाहत भयो भोर जनि देर लगाओ"॥

८६ सुनि महिषी बिलखाइ कफन फारन उर ठायो।
पै ज्यों हि [illegible] कहि हाथ बढ़ायो॥
त्यों [illegible] लगी कंपन महि सारी।
भयो [illegible] विस्मयकारी॥

८७ [illegible] सुनाइ
बरसन [illegible] सुमन [illegible] छाइ
[illegible]

फैलिगई चहुँ ओर बिज्जु कैसो उजियारो।
गहि लीन्ह्यो कर आनि भयानक हरि असुरारी॥

८८ लगे कहन पुनि वारि हारि "बस महाराज! बस।
सत्य धर्म की परमावधि है गई आजु बस॥
पुनि पुनि काँपति धरी पुन्यमय लखहु तिहारे।
अब रच्छहु तिहुँ लोक मानि मन बचन हमारे"॥

८९ करि दण्डवत प्रणाम कह्यो महिपाल जोरि कर।
"हाय! हमारे काज किये यह कष्ट कृपा कर"॥
एतो ही कहि सके बहुरि नृप गए मुरछायो।
तब शैब्या सों नारायन यह टेरि सुनायो॥

९० "पुत्री! अब मत करौ सोच सब कष्ट सिरायो।
धन्य भाग हरिचन्द्र भूप सो पति जो पायो"॥
रोहिताश्व की देह ओर पुनि देखि पुकारी।
"उठौ भई बहु बेर कहा सोवन यह धारी"॥

९१ ऐसो कहतहिं भयो तुरत बढ़ि कै सो ठाढ़ो।
जैसे छिटक उठत बेगि नसि सोवत गाढ़ो॥
लख्यो चकित ह्वै चारहूँ ओर सविस्मय देखन।
कबहुँ मात ओर कबहुँ पिता को बदन निरेखन॥

९२ नारायन को अंक उमग मैं पुनि अम्बर काँप्यो।
[illegible] हाँक्यो॥
[illegible] पुनि उमग बधायें।
हर्षित [illegible] बहु दृग आँसू बहावैं॥

* * * *

९३ [illegible] मर्नन।
[illegible] पुहु बैननि॥

"महाराज! यह सकल दुसह दुख हती हमारी।
पै तुमकौं तौ तोऊ भई महा उपकारी॥

६४ स्वर्ग कहै को तुम अति श्रेष्ठ ब्रह्म-पद पायो।
सब सब हमहु दोय जो कछु हम सौं बनि आयो॥
बहुरि कह्यौ वैकुण्ठ-नाथ नृप-हाथ हाथ गहि।
जौ कछु इच्छा होहि और सो माँगहु बेगहि"॥

६५ कह्यौ जोरि कर भूप "आज प्रभु दरस तिहारे।
सकल मनोरथ भये सिद्ध इक संग हमारे॥
यद्यपि माँगत यह वर आयसु पाइ तिहारी।
नव प्रसाद वैकुण्ठ लहै सब प्रजा हमारी"॥

६६ "तथास्तु" कहि कह्यौ बहुरि हरि विपति-विदारन।
अवधपुरी के कीट पतंगनि लौं तुव कारन॥
पाइ सकत हैं परमधाम कछु संसय नाहीं।
ऐसेहि पुन्य-प्रताप-पुंज राजत तुम माहीं॥

६७ पै [illegible] हिये लोभ मन नाहिं हमारे।
कहहु और जो कछु मन मैं होहि तिहारे॥
यह सुनि गद्‌गद बचननि कह्यो महिपालि जोरि कर।
[illegible] सुजान महा आनँद रत्नाकर॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]

१०० बोले हरि मुद मानि "अजहुँ स्वारथ नहिं चीन्हो।
साधु साधु हरिचन्द जगत हित मैं चित दीन्हो" ॥
इहि कुल तव कुलराज्य माहिं ह्वै हैं ऐसे हो।
तुम्हें देत सकुचाहिं न वर माँगो कैसो हो" ॥

१०१ यों कहि पती संग नृपहि नर मंगनि धारे।
रोहिताश्व को सौंपि राज्य सब धर्म सहारे ॥
निज विमान बैठाय बेगि बैकुण्ठ पधारे।
भई पुष्प-वर्षा भय जय जय शब्द पुकारे ॥

बाबू जगन्नाथ प्रसाद बी०

३—युद्ध निन्दा

१ अरे तू अधम काल के मित्र,
जगत के शत्रु! नीच संग्राम।
अरे धिक्कार तोहि सौ बार,
अमङ्गल तु अद्! पातक धाम ॥

२ सघन सुख पङ्कज पुञ्ज तुषार
[illegible] [illegible] [illegible] ठन-कुठार।
[illegible]
[illegible] [illegible] ॥

३ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] नृप ॥

४ नीच नृप के मद के परिणाम,
देश - दुष्कर्म - विपाक स्वरूप।
प्रजामुद कुसुमाकर को ग्रीष्म,
भरे दारुण सन्ताप अनूप॥

५ सहस्रन घायल डारे बीर,
कराहि कलपि कलपि बलहीन।
सहस्रन मूर्छित भरहिं उसाँस,
जियन को घटिका हैं या तीन॥

६ सहस्रन जूझि गये बलवान,
सिपाही समर धार सरदार।
सहस्रन गज तुरङ्ग भे नष्ट,
छेलके बानन की बौछार॥

७ सहस्रन धामन में कुहराम,
मच्यो है सकरुन हाहाकार।
चहूँ दिशि शोकावलि सरसात,
सहस्रन उजरि गये घर बार॥

८ सहस्रन बालक भोरे हाल,
भये असहाय हाय बिन बाप।
[illegible] के तिन को मात्र,
[illegible] मै हैं [illegible] महा [illegible]नताप॥

९ [illegible] बूढ़े दुर्बल लोग,
निरुपाय भये रहे [illegible] हारि।
[illegible] रोदन बेढ़ा हाय,
[illegible] तुम गये कमर [illegible]।

१० सहसन बन्धु दुहाई देत,
"हाय! करि हिये दया हैं नाहिं।"
हमारो उठ गयो बन्धु जवान,
हमारी टूट गई हा! बाहिं॥

११ सहसन नारी यहाँ समाइ
भई विधवा है शोक महान।
बरनि को सकै अहो दुःख घोर,
अहै सो करुना मूरति मान॥

१२ मृतक सी परी महीतल माहिं,
दया के योग्य भरी सन्ताप।
कबहुँ जो होवै मुरछा दूर,
करै तो अतिशय घोर विलाप॥

१३ "कहाँ तुम गये प्रानआधार,
जगत जोबन के शोभारूप।
गये कित स्वामी! सुख के धाम,
बोरि दासी को दुख के कूप॥

१४ हाय! कहँ गये कन्त,
छाँड़ि बीचहिं हमारो साथ।
हाय! सुरनगर बसायो जाय
निठुर ह्वै करि हम दुखिन अनाथ॥

१५ हमारे चूड़ामनि सिरमौर!
हमारे प्रान, सकल सोहाग
गये पिय! कित शृङ्गार नसाय,
अरे निर्दयी दई! हा भाग॥

१६ करो हे प्रीतम ! सो दिन याद,
जबै तुम गह्यो हमारो हाथ।
कह्यो करि साखी देवहि आप,
"जनम लौं देहैं तुम्हरो साथ ॥"

१७ प्रानप्यारे ! क्यों मुख को मोरि,
गये तजि भला प्रतिज्ञा तोरि।
चले इति आवो हाय बहोरि,
विनवौ चरन परस कर जोरि ॥

१८ पिया ! शय्या पर सोवन-हार,
आज तुम परे कठिन रनखेत।
कन्त ! अँगराग लगावन-हार,
धूरि तन भरो भूरि केहि हेत ॥

१९ प्रानवल्लभ ! नित रहे दयाल,
सही नहिं कबहुँ हमारी पीर।
आज लखि हमें हाय बिलखाति,
न पोंछत काहे नैनन नीर ॥

२० कबहुँ नहिं कियो कन्त ! आलस्य,
जगत हे नेकहि खटका पाय।
निपट देखाई सोवत नाथ
[illegible] निश है हाय ॥

२१ कबहुँ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

२८ जगत में तूही बार अनेक,
प्रगट ह्वै किये घने उतपात,
भरे इतिहासन में वृत्तान्त,
तिहारे, दुर्गुण के विख्यात ॥

२९ सुरासुर समर महान प्रचण्ड,
भये भय करन अनेकन बार।
भई तिनमें हिंसा विकराल,
अपरमित ह्वै भई संहार ॥

३० पर्शुधर क्षत्रियगण के युद्ध,
नष्ट कर दीन्हें अगणित वंस।
चलो घर भूपति संख्यातीत,
प्रतापिन लहरो सहज विध्वंस ॥

३१ राम रावण को समर प्रसिद्ध,
उपस्थित भयो भयानक घोर।
अपरमित बलधर कला प्रवीण,
नाहिं योद्धा विक्रान्त अघोर ॥

३२ लड़े त्यों जरासिन्धु यदुवंश।
भयो हरि बानासुर संग्राम।
भयङ्कर भयो महा विकराल,
महाभारतहु रण हिंसा धाम ॥

३३ रूस यूनान मिश्र वा रोम,
स्पेन जर्मन वा इङ्गलिस्तान।
आस्ट्रिया फ्रांस टर्की वा हिन्द,
अफ्रीका अमरीका जापान ॥

झरे रेत शुचि फूल, धौलि की छवि परकासी
मन्द मन्द अब चले, सरित मद भरि प्रमदासी ॥

४ शंखनाल से सेत, कतहुँ चाँदी के रंगा।
हलकु होइ बिन वारि, होत घन छन छन भंगा ॥
उड़त पौन के साथ मेघ, सब नभ अब छाजत।
नृप समान चहुँ ओर, चँवर डोलत में राजत ॥

५ धौरे नील सुरंग, अकास अब लगै सुहाई।
दुपहरिया के खिलत, भूमि छाई अरुनाई ॥
पकत धान की बालि, खेत सब लखियत गोरे।
लखि तरुनन के चित्त, होयँ अब उमँगन भोरे ॥

६ डोलत मंद बयार, डार फुनगी कछु झूमत ॥
छके किये मधुपान, भ्रमर फूलन जनु चूमत ॥
खिले फूल के गुच्छ, लसत पल्लव कछु सोहैं।
शरद माँहि कचनार, लाल सब कर मन मोहैं ॥

७ भूषन पहिरि जड़ाव, खिलत नभ महँ जब तारे।
छटत मेघ अति बिमल, चंद निज बदन उघारे ॥
लसत बिमल अँग अँग, जोन्हकी[1] उज्वल सारी।
बाढ़त दिन दिन रैन, मनहुँ श्यामा कोउ नारी ॥

८ उठत लहर हिलोल, बीच सर काटत नीरा।
बलक सारस वृध बैठि, नाचन मिलि तीरा ॥
चक्रवाक उत चलत हँस कूजत मद भरि इत ॥
परी कमल की धूरि, मरंद माहिं सब कर चित ॥

९ जोन्ह जाल फैलाय, भवन को चित्त लुभावत।
करि प्रमद समार, इन्दु किरनैं बरसावत ॥

१ चन्द्र चाँदनी

भूमि पै कीच सुखानो चहूँ दिसि,
तालन में भये निर्मल वारी।
तारे खिले नभ में अखिल,
चमकी ससि की जग में उजियारी॥

२२ नायक ज्यों करसों निज भानु,
जो प्रीति सों भानु जगावत भाई।
प्रात समै तरुनी मुख के सम,
तालन लेत सरोज जम्हाई॥
डूबत देखि निसापति को अब,
कूईं के फूल मनो दुःख पाई;
होत है चंद बिदेस गए पिय,
भूप-प्रिया मुसुकात की भाई॥

२३ नील सरोजन माहिं विहारत,
मैन पियारिन के कजरारे।
देखि कै हंस की कूजत पाँती,
सुवर्ण की किंकिन की छबि धारे॥
लाल दुपहरिया को पखरोन
बिलोकि, कै मोहन चोलि बिचारे।
रोवत सी अकुलात फिरैं,
परदेसी वियोग की आगि के जारे॥

२४ ताल मराल बनाय विलोचन,
पंकज से सुचि आनन वारे।
फूलो जो कास लसै महि पै,
पाकै अति सेत मनों [illegible] भारे॥

फूलैं फुलात मनौं मुसकात सो,
कामिनी सी शरदा मतवारी।
देइ अनंद अनूपम, भूप
बनै सो प्रिया, सुखमूरि तुम्हारी ॥

५—खटमल

[पण्डित माधवप्रसाद मिश्र विरचित]

१ रे खटमल खटिया के संगी, कलकत्ते का यार।
चपल चतुर पर तुच्छ जीव, अद्भुत तेरा व्यापार ॥
होता जहाँ प्रकाश, वहाँ आने में भी घबराता है।
अन्धकार में किन्तु दौड़ता मन्दभाग्य तू जाता है ॥

२ दिन में रहता छिपा छिद्र में जब आती है रात।
करता फिरे निशाचरी तब तू घर में घोर उत्पात ॥
जो अगम्य है जगह वहाँ पर भी होती तब गति तेरी।
दुर्गम विषय कुपथ में चलने तुझे लगे नहि कुछ देरी ॥

३ यद्यपि जनक कृष्ण मुख तेरा [illegible] रंग सुरंग।
है जाने पर बड़ बिगड़ जाता कितनों का रंग ॥
पर अद्भुत [illegible] विनाशक गुण [illegible] में है आता।
माँ पर पूत [illegible] पर घोड़ा [illegible] थोड़ थोड़ बतलाता ॥

४ शुद्ध साफ लोगों में रहता नहिं तेरा सञ्चार।
मलिन जनों का साथी हो कर काटे है हर बार ॥
पर ना इस करनी पर [illegible] न कुछ अचरज आया।
[illegible] हो आया ॥

५ यद्यपि वृश्चिक सर्प आदि विषधर हैं जीव अनेक।
दब जाने पर झिड़ें काटने की पूरी है टेक॥
विना दवाए विना बात चुपके चुपके आ कर मनहूस।
गुप्त रीति से निरपराध का रक्त अरे तू लेता चूस॥

६ नहीं फूल दल की कोमलता पर तेरा जो ध्यान।
मखमल का तन सपट्ट बिछौना तकिये में दे प्रान॥
अपना रूप छिपाने को फिर ऐसा रंग जमाता है।
क्षुद्र छिद्र के लिये व्यर्थ कितने ही चक्कर खाता है॥

७ अँगरेज़ों के आफ़िस में नहिं है तेरा गुज़रान।
कुछ लोगों की तीव्र दृष्टि से वहाँ न पावे जान॥
एक आध सहियल आफ़िस में यद्यपि देखा जाता है।
अधिक देर तक किन्तु वहाँ पर भी नहिं रहने पाता है॥

८ बङ्ग देश के दूरदर्शियों की गलियों में ज़ोर।
तेरा क्या बँध सके ? वहाँ की बात ही है कुछ और॥
इस कारण तज सब लोगों को मारवाड़ियों से कर प्यार
तूने महिमा दिखलाने को केन्द्र बनाया बड़ाबजार॥

९ बालक वृद्ध युवक युवती सब पर तेरा आतङ्क।
राजा रैयत पाण्डे पण्डित रहते सभी सशङ्क॥
निज लघुता का ध्यान न कर तू गहरा गश दिखाता है।
वृद्ध पुरोहित पञ्चों की पगड़ी तक पर चढ़ जाता है॥

१० "रक्तपात द्विज सब के हैं" ये गावें सकल पुरान।
उनका रक्त पान करना है कुल पापों का खान॥
अपने मुख से निरकारण उन लोगों पर भी करता वार।
इस तेरे बल की महिमा का अन्य कहें या दें धिक्कार॥

सुकपोल करतल पर ललित यों दर्शनीय विशेष था ।
मृदु नवल-पल्लव सेज पर ज्यों पड़ा नलिनेश था ॥

७ शय्या-वसन-संघर्ष से जो हो रहे अति क्षीण थे ।
उन अँगरागों से रुचिर वे अंग उनके पीन थे ॥
ज्यों शरद ऋतु में धवल घन के विरल खण्डों से सदा ।
होती सुनिर्मल नीलतम की छवि घटा मोदप्रदा ॥

८ ऐसे समय में शीघ्रता से पहुँच दुर्योधन वहाँ ।
श्रीकृष्ण के सिर ओर बैठा रुचिर आसन था जहाँ ॥
कुछ देर पीछे फिर वहाँ आ कर विना ही कुछ कहे ।
हरि के पदों की ओर अर्जुन नम्रता से स्थित रहे ॥

९ उस समय दोनों के हृदय में भाव बहु उठने लगे ।
पर कह सके कुछ भी न वे जब तक न पुरुषोत्तम जगे ॥
दो ओर से आते हुए युग जल प्रवाह बहे बहे ।
मानों मनोरम शैल से हों बीच ही में रुक रहे ॥

१० कुछ देर में जब भक्तवत्सल देवकी-नन्दन जगे ।
तब देख अर्जुन को प्रथम बोले वचन प्रियतापगे ॥
"हे कुशल सब भाँति भारत ! कहो आये हो कहाँ ।
हो कार्य मेरे योग्य जो प्रस्तुत सदा मैं हूँ यहाँ" ॥

११ कहते हुए यों सेज पर निज पूर्व तनु के भाग से ।
पयदू [illegible] बैठ कर अनुराग से ॥
सब [illegible] निज वचन कहने के लिए ।
हुआ [illegible] हरि ने सुदिन हो प्रेरित किए ॥

१२ तब देख उनको [illegible] हँस कर कुछ विचित्र विनोद से
निज सिर [illegible] हुए उनका नम्र हो कर मोद से ॥

दश कोटि निज सेना करूँगा एक ओर सशस्त्र मैं।
केवल अकेला ही रहूँगा एक ओर निरस्त्र मैं" ॥
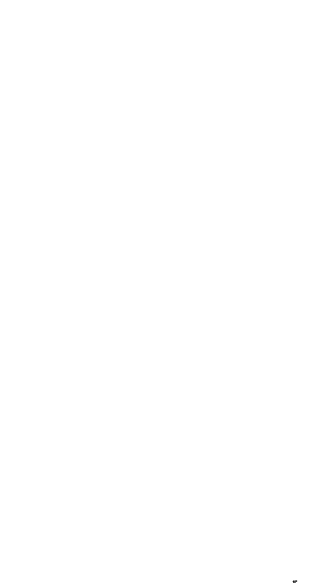
१९ दो भाग निज साहाय्य के इस भाँति हैं मैंने किये।
स्वीकार तुम दोनों करो, हो जो जिसे रुचिकर हिये ॥
रण-क्षेत्र में निज ओर से सेना लड़ेगी सब कहीं।
पर युद्ध की है बात क्या, मैं शस्त्र भी लूँगा नहीं ॥

२० सुन कर वचन यों पार्थ ने स्वीकार श्रीहरि को किया।
कुरुनाथ ने नारायणी दश कोटि सेना को लिया ॥
तब पार्थ से हँस कर वचन कहने लगे भगवान यों।
स्वीकृत मुझे तुमने किया है त्याग सैन्य महान क्यों ॥

२१ गंभीर हो कर पार्थ ने तब यह उचित उत्तर दिया।
"था चाहिए करना मुझे जो, है वही मैंने किया ॥
है सैन्य क्या, मुझको जगत भी तुम बिना स्वीकृत नहीं।
श्रीकृष्ण रहते हैं जहाँ सब सिद्धियाँ रहती वहीं" ॥

मा० मैथिली शरण गुप्त।

जर बिन दुख भूखे बहुतेरे जर बिन सुख लहिये नहिं हरगिज़।
जिनके सिरपर हरि से साहिब जर बिन रंज सहै नहिं हरगिज़॥

१५ जर खातिर हज़ार फिकरों में दिल को फिकरबंद नहिं करना।
जर खातिर जो भार आपना हलका कर आगे नहिं धरना॥
जर खातिर जो मिश्रहि मिलना इससे बहुत भला है मरना।
इसी हाल में सीकर रहना जो दुख हो सो सुख कर भरना॥

१६ जहाँ मोहोब्बति का है पैदा तहाँ न लहर बड़ाई लहिये।
भेद जु धरा होय दिल अन्दर सो सब जाय यार से कहिये॥
और हिजाब न कीजे हरगिज लीजे बेशक जो कछु चहिये।
कौन सफ़ल है स्वामी मेरे रहने आब आग में डहिये॥

१७ क्या तुझको यह झकसी लागी कहती रहती यही कहानी।
जो मेरे माकूल न आई सो खातिर में नहीं आनी।
जैसी संकल्प होई औरन की ऐसो संमुझ जु तेरी जानी॥
और संकुरति को करि पैदा और अंदेसा कौढ़ि अपानी॥

१८ तुम तो बोहीन पढ़े पढ़िन हो हमतो सफल कहाँ से पाई॥
परि तुम फिकिर किया नहिं दिल में जो यह ठोर सको न बड़ाई।
जिसको है पैदाइस दुनिया जल थल में वह रहा समाई।
कहा मानि उठि चलि रे बालमसो सब आलम का सुखदाई॥

१९ तेरी भई तबीयत खोटी सोई करे जहाँ दिल अटका।
मेरी फिकिर न कुछ खातिर में जाइ न और तरफ को भटका॥
तुझको तमें भइ लज्जित[1] की मेरे कुछ नाही है खटका।
और अदाफति टूटि गई है फिर फिर उसी बात का लटका॥

२० जो कुछ कहा गैास धरि साजे होस हमारा किनिक स्वामी।
उसके कदमों जाहु नाहि तुम नहीं न होइ तुम्हे बदनामी।

[1] कुदरत।

अभिमन्यु वध

नकुल वीर सहदेव रिसाने ।
धृष्टद्युम्न रण को अरुझाने ॥
इत सब वीर क्रोध रण मंड्यो ।
सिंधुराज सर सबहिं बिहंड्यो ॥
गदा हाथ गहि भीम भयंकर ।
प्रलयकाल महँ मानहुँ शंकर ॥
दै करि हाँक क्रोध करि धाये ।
मनहुँ घटा घन महँ घहराये ॥
तब जयद्रथ कीन्ह संधाना ।
भीम अंग मारे शत बाना ॥
बाण लग्यो तब मोह जनायो ।
तब सारथि रथ फेरि चलायो ॥
दश शर धर्मराज उर मार्यो ।
नकुल हृदय बहु बाण प्रहार्यो ॥

दोहा

यह सुनि के शंकर कहेउ, दीन्हेउ बर जयद्रथ ।
चारि बंधु तुम जीति हो, पारथ अजय समर्थ ॥

चौपाई

यहि विधि शंकर तें बर पायो ।
ता कारण सब को बिचलायो ॥
दूजे द्वार जब अभिमनु गयऊ ।
तहाँ द्रोण को दर्शन भयऊ ॥
सब क्षत्रिन सों द्रोण सुनायो ।
अभिमनु युद्ध नेहि कै आयो ॥
तहँ लगि सबहिं शर मारन ।
यह अकम उन वीर हजारन ॥

तीक्षण बाण कर्ण गुण जोरे।
सो अभिमनु सब बीचहिं तोरे॥
दिव्य बाण अभिमन्यु चलायो।
भूमि अकाश दशहुं दिशि छायो॥
देखि अनीक सबहिं भ्रम भयऊ।
तैा लगि व्यूह भेदि कै गयऊ॥

दोहा

पेलि द्वार भीतर गयो, जात न लागी बार।
पहुंचे चैाथे द्वार जहँ, कृपाचार्य सरदार॥

चैापाई

आये अभिमनु सबहिं पुकारे।
कृपाचार्य तब धनुष संभारे॥
महायुद्ध कीन्हों पुरुषारथ।
तेहि क्षण भयो भयानक भारथ॥
पुनि अनेक सेना बध कीन्हो।
रुण्ड मुण्ड कछु जात न चीन्हों॥
कृपाचार्य क्रोधित सर जोरे।
ते अभिमनु बीचहिं सब तोरे॥
अपर पांच सर मारो लै जब।
चेत न रहा भयो घायल तब॥
पेलि द्वार अभिमनु जब आयो।
द्रोण पुत्र तब रोकि न पायो॥
कर धनु सर गहि कै रन आवत।
मार मार कर हांक सुनावत॥
अश्वत्थामा लागेउ सर कर
उर धर सम लागेउ वचन सार॥

दे॰ ६

भूरिश्रवा बाण दस छाँटे।
कुँअर हाथ को खड्गहि काटे॥
तीनि बाण सारथि उर मारे।
आठ बाण ते अश्व सँहारे॥
सारथि जूझि गिरे मैदाना।
अभिमनु बीर चित्त अनुमाना॥
यहि अंतर सेना सब धाये।
मारु मारु कै मारन आये॥
रथ को खैंचि कुँअर कर लीन्हें।
तातें मारु भयानक कीन्हें॥
अभिमनु कोपि खम्भ परिहारे।
एक एक घाव बीर सब मारे॥

दोहा

अर्जुन सुत इमि मारु किय, महाबीर परचण्ड।
रूप भयानक देखियतु, जिमि लीन्हें यमदण्ड॥

चौपाई

क्रोधित होइ चहूँ दिशि धाये
मारि सर्व सेना बिचलाये॥
यहि बिधि किये भयानक मारन।
साहस धन्य धन्य पुरुषारथ॥
ऐसा मारु अधम सों कीन्हे।
दस सहस्र राजा बधि लीन्हे॥
मारि सर्व राजा बिचलाये।
अरु अनेक राजा मिलि धाये॥

मातु चित्त कछु संशय मेरे ।
तातें उपजत सोच घनेरे ॥
ते सब सर गुरु बीचहि काटे ।
पाँच बाण तिन फिर कै डाटे ॥
द्रोण सात्यकी मा रण रता ।
दोनों ओर महा बल वंता ॥
दोऊ सरस रचेउ पुरुषारथ ।
कीन्हेउ महा भयानक भारत ॥
द्रोण गुरु या विधि सर जोरे ।
व्यूह द्वार ठहरात न थोरे ॥

दोहा

हँसि भाषेउ गुरु द्रोण तब, सुनि सात्यकि अज्ञान ।
बाहर हुइ अर्जुन गयो, तुम चाहत इत आन ॥

चौपाई

यम अरु इन्द्र वरुण जो आवैं ।
व्यूह द्वार होइ जान न पावैं ॥
सुनि सात्यकी किये पद वन्दन ।
पैसटके तब हाँकेऊ स्यंदन ॥
जौन पथ पारथ शुभ कीन्हेउ ।
धर्मलोक मारग धरि लीन्हेउ ॥
जाइ व्यूह कीन्हा परवेसा ।
रण महँ जान बहुत नरेसा ॥
बहुँ मार दारुण सर मारत ।
नाना अस्त्र शस्त्र परिहारत ॥

बधि नरेश अपने रथ आवा।
हाँकि तुरङ्ग अग्र को धावा॥
विक्रम युद्ध करत पुरुषारथ।
पहुँचो जाइ लरत जहँ पारथ॥
श्रीहरि निरखि बहुत सुख पाये।
भले भये सात्यकि तुम आये॥
अर्जुन युद्ध करत परतक्ष।
नन्दिघोष पाछे तुम रक्षक॥
अस कहि रथ हाँके बनवारी।
दल मारत अर्जुन बलधारी॥

दोहा

एकै सर अर्जुन हनै, गुण जोरत दस बाण।
छूटत ही सत होत है, बधत सहस परिमाण॥

चौपाई

यदि विधि तें सेना संहारै।
सम्मुख वीर जुरे तें मारै॥
सोमदत्त नृप बड़े धनुर्द्धर।
सो है जुरे गहे मारग सर॥
रह रह करि कीन्हों भधाला।
अर्जुन उर मारे दस बाना॥
कृष्ण अंग दस बाण प्रहारे।
बाम बाण हनुमानहि मारे॥
सोमदत्त कीन्हों पुरुषारथ।
क्रोधित है जोरे सर पारथ॥

पढ़ि रवि मंत्र बाण सब छांटे।
सोमदत्त को सीसहि काटे॥
मुकुट समेत परो महि धरणी।
अर्जुन रण कीन्हों यह करणी॥
बाह्लीक गंधार महारथ।
सेन समेत करत पुरुषारथ॥
नृप कौमोद धनुष कर लीन्हें।
मारु मारु पारथ पर कीन्हें॥
चहुँ दिशि से लागे सर मारन।
बहु तक छुरे कुन्त हथियारन॥

दोहा

सर पर्वत है चोर सब, शक्ति खड्ग की धार।
शूल गदा मुग्दर हने, चहुँ ओर को मार॥

चौपाई

सेना सबै आनि रथ घेरे।
मारु मारु कहि चहुँ दिशि टेरे॥
पै पारथ मन नेकु न भंगा।
सर संधान करत रणरंगा॥
अर्जुन बचन मिन यहि रूपहि।
प्रलय होत जिमि जल भूपहि॥
मातंग दल काटे सर खण्डित।
रुण्ड मुण्ड धरनी सब मण्डित॥
[illegible] सब [illegible] महाबल।
[illegible] नहि [illegible] बल॥

यहि विधि करत घोर संग्रामा।
जूझि गिरे कुरुपति के कामा॥
पारथ चरित करत निकन्दन।
नन्दि घोष हाँकत जगवन्दन॥
जो दल अर्जुन मारि गिराये।
लोथिन पर हरि रथहिं चलाये॥
या विधि सघन फ़ौज अति भारी।
प्रभु सारथि पारथ धनु धारी॥
महारथी सब बाण चलावहिं।
नन्दिघोष रथ छाँह छिपावहिं॥

दोहा

कठिन मध्य मावहिं जबहिं, आहि न रिपु बचि ज
ऊपर श्रीहर लेत सर, अर्जुन अंग बचा

चौपाई

नृप कम्बोज कठिन सर मारे।
कृष्ण अंग सत बाण प्रहारे॥
श्याम शरीर रुधिर छवि छाये।
पीत वसन तनु अरुण सुहाये॥
क्रोधमग्न अर्जुन सर छांटे।
नर कम्बोज के सीसहिं काटे॥
हाँकत अश्व जगत के नाते।
हरि बार लागे सर मारत॥
बहुतक ज्ञान छाँड़ि अपदाने,
महाशूर सब धीर बाने॥

अभिमन्यु वध

नन्दिघोष रथ राजन घेरे ।
सावधान अर्जुन हरि हेरे ॥
बाहु विशाल कृष्ण परिहारत ।
अभिरत ता जनना सो मारत ॥
पुनि अनेक नर अर्जुन काटत ।
रुण्ड मुण्ड वसुधा सब पाटत ॥
या विधि होत युद्ध की करणी ।
महा मार कछु जाइ न वरणी ॥
रथ पाछे सात्यकि हैं रक्षक ।
वीर अनेक वधे परतक्षक ॥

दोहा

या विधि अर्जुन रण करत, होत घोर संग्राम ।
हाँक देत हय हाँकहीं, सारथि श्रीघनश्याम ॥

चौपाई

या विधि अर्जुन करत मसाना ।
भारत अवनि करत मैदाना ॥
जानो गह्यो पतित के पावन ।
थके तुरग सकैं नहिं धावन ॥
अस्त्र कियो वारुन जल पाना ।
पारथ सं[illegible] आप बखाना ॥
[illegible] ऊर्ध्व[illegible] भयऊ ।
तृषित तुरग तब पा[illegible] गयऊ ।
अर्जुन [illegible] न करा अंदेसा ।
जल उपाय करि[illegible] हय कसा ॥

अभिमन्यु वध

सकर नाथ अम्बन को धोये।
फरकन लगे सबै श्रम खोये॥
फेंटि खोलि तब चूरण लीन्हें।
मिश्रित करि निश्चित तेहि दीन्हें॥
अर्जुन गये कृष्ण के पासा।
कहि कहत सुनि बचन उदासा॥
शशि को पुत्र कहँ बुध नामा।
काको सुत आयो केहि कामा॥
सुत नातो छाँड़ो केहि कारण।
मोतें भाषो नाथ निवारण॥
आदि कथा हरि भाषन लागे।
सुनिये पारथ परम सभागे॥
जब हम जठर देवकी आये।
देव दैत्य सब जग महँ आये॥

दोहा

सत्रो हैं जग मे सबै, मम लीला के काज।
कुरुपति कनिका मत है, धर्म युधिष्ठिर राज॥

चौपाई

[illegible] भय पाण्डव हितकारा।
[illegible] अर्जुन को अधिकारा॥
[illegible] कहँ चन्द्र सुन लाजे
[illegible] जन्म [illegible] काजे॥
[illegible] अभिमन्यु कर कहा
[illegible] पुत्र [illegible] धर रहा॥

ते किमि जानहिं रघुपतिहि,
मूढ़ परे तम कूप॥

२३ निर्गुन रूप सुलभ अति,
सगुन न जानहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित,
सुनि मुनिमन भ्रम होइ॥

चौपाई

२४ सुनहु राम कर सहज सुभाऊ।
जन अभिमान न राखहिं काऊ॥
संसृत मूल सूलप्रद नाना।
सकल-सोक-दायक अभिमाना॥

२५ ता तें करहिं कृपानिधि दूरी।
सेवक पर ममता अति भूरी॥
जिमि सिसुतन व्रन होइ गुसाईं।
मातु चिराव कठिन की नाईं॥

दोहा

२६ [illegible] प्रथम दुख पावइ,
[illegible] बाल अधार।
[illegible] नास हित जननी
[illegible] न सो सिसु पार॥

२७ [illegible]
[illegible] मान हित लागि।
[illegible]
[illegible] भ्रम त्यागि॥

राम-भजन विनु मिटहिं कि कामा ।
थल विहीन तरु कबहुँ कि जामा ॥

६ विनु विज्ञान कि समता आवै ।
को अवकास कि नभ विनु पावै ॥
श्रद्धा बिना धरम नहिं होई ।
विनु महि गंध कि पावइ कोई ॥

७ विनु तप तेज कि कर विस्तारा ।
जल विनु रस कि होइ संसारा ॥
सील कि मिल विनु बुध सेवकाई ।
जिमि विनु तेज न रूप गुसांई ॥

८ निज सुख विनु मन होइ कि थीरा ।
परस कि होइ विहीन समीरा ॥
कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा ।
विनु हरि भजन न भव-भय नासा ॥

दोहा

९ बिनु बिस्वास भगति नहि
तेहि बिनु द्रवहि न राम
रामकृपा बिनु सपनेहुँ
जीव न लह बिस्राम ॥

सोरठा

१० अस बिचारि मति धीर
तजि कुतर्क संसय सकल

दो०—६

११—कागभुशुण्डि और गरुड़ संवाद

[३]

सोरठा

१ तुम्हहि न व्यापत काल,
अति कराल कारन कवन ?
मोहि सो कहहु कृपाल !
ज्ञान प्रभाउ कि जोग बल ?

चौपाई

२ जप तप व्रत मख सम दम दाना।
बिरति बिबेक जोग बिज्ञाना॥
सब कर फल रघुपति-पद प्रेमा।
तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा[१]॥

३ एहि तन राम भगति मैं पाई।
तातें मोहि ममता अधिकाई॥
जेहि तें कछु निज स्वारथ होई।
तेहि पर ममता कर सब कोई॥

सोरठा

४ पन्नगारि असि नीति,
श्रुति सम्मत सज्जन कहहिं।
अति नीचहु सन प्रीति,
करिअ जानि निज परम-हित॥

[illegible]

११ कहत कठिन समुझत कठिन,
साधन कठिन विवेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं,
पुनि प्रत्यूह अनेक॥

चौपाई

१२ ग्यान पंथ कृपान कै धारा।
परत खगेस होइ नहिं बारा॥
जौं निरबिघ्न पंथ निरबहई।
सो कैवल्य परमपद लहई॥
१३ अति दुर्लभ कैवल्य परमपद।
संत पुरान निगम आगम बद॥
रामभजत सोइ मुकुति गोसाईं।
अनइच्छित आवइ बरिआईं॥
१४ जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई।
कोटि भाँति कोउ करै उपाई॥
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई।
रहि न सकइ हरि भगति बिहाई॥

अस हरि भगति सुगम सुखदाई।
को अस मूढ़ न जाहि सुहाई॥

दोहा

३७ सेवक सेव्य भाव बिनु,
भव न तरिय उरगारि।
भजहु राम-पद पंकज,
अस सिद्धान्त बिचारि॥

३८ जो चेतन कहँ जड़ करै,
जड़हि करै चैतन्य।
अस समरथ रघुनायकहिं,
भजहिं जीव ते धन्य॥

चौपाई

३९ कहेउँ ग्यान सिद्धान्त बुझाई।
सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई॥
राम भगति चिन्तामनि सुन्दर।
बसै गरुड़ जाके उर अंतर॥

४० परम प्रकास रूप दिन राती।
नहिं कछु चहिय दिया घृत बाती॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा।
लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥

४१ प्रबल अविद्या तम मिटि जाई।
हारहिं सकल सलभ समुदाई॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं।
बसै भगति जाके उर माहीं॥

४२ गरल सुधासम अरि हित होई।
तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥
व्यापहिं मानस रोग न भारी।
जिन्हके बस सब जीव दुखारी॥

४३ राम-भगति-मनि उरबस जाके।
दुख-लव-लेस न सपनेहुँ ताके॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं।
जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥

४४ सो मनि जदपि प्रगट जग अहई।
रामकृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥
सुगम उपाइ पाइबे केरे।
नर हत भाग्य देहिं भट भेरे॥

४५ पावन पर्बत बेद पुराना।
राम कथा रुचिराकर नाना॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी।
ज्ञान बिराग नयन उरगारी॥

४६ भाव सहित खोजइ जो प्रानी।
पाव भगतिमनि सब सुखखानी॥
मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा।
राम तें अधिक राम कर दासा॥

४७ रामसिंधु घन सज्जन धीरा।
चंदन तरु हरि संत समीरा॥
सब कर फल हरिभगति सुहाई।
सो बिनु संत न काहु पाई॥

४८ अस बिचारि जोइ कर सतसंगा।
रामभगति तेहि सुलभ बिहंगा॥
उत्तरकांड

१२—कागभुसुण्डि और गरुड़ संवाद

[४]

[गो० तुलसीदास जी के रामचरितमानस से]

दोहा

१ ग्यान पयोनिधि मंदर,
ग्यान संत सुर आहि।
कथा सुधा मथि काढ़हिं,
भगति मधुरता जाहि॥

२ बिरति चर्म असि ग्यान मद,
लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइय सो हरिभगति,
देखु खगेस बिचारि॥

चौपाई

३ पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ।
जौं कृपालु मोहि ऊपर भाऊ॥
नाथ मोहि निज सेवक जानी।
सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी॥

४ प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा।
सब ते दुर्लभ कवन सरीरा॥

बड़ दुःख कवन कवन सुख भारी।
सोउ संछेपहि कहहु बिचारी॥

५ संत असंत मरम तुम्ह जानहु।
तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु।
कवन पुन्य स्रुति बिदित बिसाला।
कहहु कवन अघ परम कृपाला॥

६ मानसरोग कहहु समुझाई।
तुम सर्वग्य कृपा अधिकाई॥
तात सुनहु सादर अति प्रीती।
मैं संक्षेप कहउँ यह नीती॥

७ नर-तन-सम नहिं कवनिउ देही।
जीव चराचर जाचत जेही॥
नरक - सर्ग - अपवर्ग - निसेनी।
ग्यान - बिराग - भगति - सुख - देनी॥

८ सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर।
होहिं बिषय रत मंद मंदतर॥
काँच किरिच बदले जिमि लेहीं।
कर तें डारि परसमनि देहीं॥

९ नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं।
संत-मिलन-सम सुख कहुँ नाहीं॥
परउपकार बचन मन काया।
संत सहज सुभाव खगराया॥

१० संत सहहिं दुख परहित लागी।
पर-दुख-हेतु असंत अभागी

भूरज-तरु-सम संत कृपाला।
पर हित नित सह बिपति बिसाला॥

११ सन इव खल परबंधन करई।
खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई॥
खल बिनु स्वारथ परअपकारी।
अहि मूषक इव सुनु उरगारी॥

१२ परसंपदा बिनासि नसाहीं।
जिमि ससि हति हिमउपल बिलाहीं॥
दुष्ट उदय जग आरत हेतू॥
जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू॥

१३ संत उदय संतत सुखकारी।
बिस्वसुखद जिमि इंदु तमारी॥
परमधरम स्रुति बिदित अहींसा।
पर-निन्दा-सम अघ न गिरीसा॥

१४ हरि-गुरु-निन्दक दादुर होई।
जनम सहस्र पाय तन सोई॥
द्विज निन्दक बहु नरक भोग करि।
जग जनमै बायस सरीर धरि॥

१५ सुर-स्रुति-निन्दक जे अभिमानी।
रौरव नरक परहिं ते प्रानी॥
होहिं उलूक संत-निन्दा-रत।
मोह निसा प्रिय ग्यान भानु गत॥

१६ सब कै निन्दा जे जड़ करहीं।
ते चमगादुर होइ अवतरहीं॥

पीड़हिं संतत जीव कह,
सो किमि लहै समाधि॥

२३ नेम धर्म आचार तप,
ग्यान जग्य जप दान।
भेषज पुनि कोटिक नहीं,
रोग जाहिं हरिजान॥

चौपाई

२४ यहि विधि सकल जीव जड़ रोगी।
सोक हरष भय प्रीति वियोगी॥
मानस रोग कछुक मैं गाये।
होहिं सब के लखि विरलइ पाये॥

२५ जाने तें छीजहिं कछु पापी।
नास न पावहिं जन परितापी॥
विषय कुपथ्य पाइ अंकुरे।
मुनिहु हृदय का नर बापुरे॥

२६ रामकृपा नासहिं सब रोगा।
जो यहि भाँति बनै संजोगा॥
सद्गुरु वैद-वचन बिस्वासा।
संजम यह न विषय कै आसा॥

२७ रघुपति-भगति सजीवन मूरी।
अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥
यहि विधि भलेहि सो रोग नसाहीं।
नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥

२८ जानिय तब मन बिरुज गोसाईं।
जब उर बल बिराग अधिकाई॥
सुमति छुधा बाढ़इ नित नई।
बिषय आस दुर्बलता गई॥

२९ बिमल ग्यानजल जब सो नहाई।
तब रह राम भगति उर छाई॥
सिव अज सुक सनकादिक नारद।
जे मुनि ब्रह्म-बिचार-बिसारद॥

३० सब कर मत खगनायक एहा।
करिअ राम-पद-पङ्कज नेहा॥
स्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं।
रघुपति भगति बिना सुख नाहीं॥

३१ कमठ पीठि जामहिं बरु बारा।
बंध्यासुत बरु काहुहि मारा॥
फूलहिं नभ बरु बहु बिधि फूला।
जीव न लह सुख हरि-प्रति-कूला॥

३२ तृषा जाइ बरु मृग-जल-पाना।
बरु जामहिं सस सीस बिषाना॥

३३ अंधकार बरु रबिहि नसावै।
राम बिमुख न जीव सुख पावै॥
हिम तें अनल प्रगट बरु होई
बिमुख राम सुख पाव न कोई॥

जौ लौं लगो काहू सों कहन कला एक तुव,
तौ लौं कैधौ कला के समूहन सम्हारतो।
जौ लौं एक तारे का हौं रचत कवित्त गंगे!
तौ लौं तुम केतिक करोरि तारि डारतो॥

१७ यम को न जोर जब पापिन पै चल्यो,
तब हाथ जोरि गंगा जू सों चुगली करै घरे।
चढ़ेन पै डरो पै ना डरो देवि तुम्हन पै,
कहै "पद्माकर" सुनावत हरे! हरे!!
चढ़ेन पै डरें पाइये बड़ाई देखो,
ईश पै हरे तो तुम्हें ईश शीश पै दरे।
तुम्हन को देतो जैसो नारायन रूप तैसो,
तुम्ह तुम्हें तुच्छ करि पावन तरे करे॥

१८ यम के जसूस बिनती यम सों हमेश करैं,
तेरी ठाकुरी को ठीक नेकु न निहारो है।
बड़े बड़े पापो औ सुरापो द्विजतापी,
तहाँ चलन न पावै कहूँ हुकुम हमारो है॥
कहै "पद्माकर" सुब्रह्मलोक विष्णुलोक,
नाम लैकै काऊ शिवलोक को सिधारे है।
बैठो सीस गंगा के तरंग है भुजंग ऐसो,
गंगा ने उठाय दीन्हो कमल [illegible] हारो है॥

१९ काम मद क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य,
इनको उजारन को जोर है पै जोर है।
कहै "पद्माकर प्रभाव पुन्य भारी भौर,
चारौ फल धामन मैं पौर है पै पौर है॥
छोभ दल दुन्दन को बाढ़ पापवृन्दन को,
फिकिर [illegible] को पौर है पै पौर है।

कहै "पद्माकर" गिरीसनीस मण्डल के,
मुण्डन की माल ततकाल अघहर है॥
भूपति भगीरथ के रथ की सुपुन्य पथ,
जन्हु जप-जोग-फल फैल की फहर है।
छेम की छहर गंगा रावरी लहर,
कलिकाल की कहर यमजाल की जहर है॥

१४ लोचन असम अंग भसम चिता की लाय,
तीनों लोकनायक सों कैसे के ठहरतो?
कहै "पद्माकर" बिलोकि इमि ढंग जाके,
वेदहु पुरान गान कैसे अनुसरतो?
बाँधे जटाजूट बैठे परबति कूट माहिं,
महाकालकूट कहो कैसे के ठहरतो?
पीवै नित भङ्ग रहै प्रेतन के संगी ऐसे,
पूँछ तो को तरी जो न गंगे सीस धरतो॥

१५ रेणु का की रामन में कोच कुम कामन में,
निकट निवासन में आसन लदाऊ के।
कहै "पद्माकर" तहाँ हाँ मनु शूरन में,
ग्रोरो ग्रोरो सूरन में पूरन प्रभाउ के॥
धारन मे थरन में रजहु दारन में,
नावनि हैं मुकुति [illegible] सब काऊ के।
कूल कों [illegible] में गंगाजल जावन में,
[illegible] में भजन में काऊ के॥

१६ सर नार [illegible] एक लहर निहारियतु,
[illegible] लहरन धारतो।
कहै "पद्माकर" [illegible] बरदान,
[illegible] अनुधारतो॥

१६—दुर्योधन की आत्मग्लानि

मधकरी छन्द

१ कियो युधिष्ठिर स्वपुर प्रवेश।
सचिव पुरोहित सह सुख देश॥
रहे सुयोधन शकुनि समेत।
लखन सभा भरि अद्भुत चेत॥

२ लख्यो फटिकमय थल अभिराम।
भरो मनो जल सों अति माम॥
तहाँ हलन को राखि विचार।
चले सुयोधन बसन उतारि॥

३ तहाँ जानि थल गये लजाय।
भागे चले सोच सों छाय॥
भरो फटिक सर जल सों जौन।
भूमि समान जानि कै तौन॥

४ चले गिरे तामें भ्रम छाय।
लखि कै हँसे भीम बरकाय॥
वसन पठायो सुनि नृपधर्म।
आये चले पहिरि सो धर्म॥

५ भामानुज सह माद्रीनन्द।
लख्यो हँसत कौरव-कुलचन्द॥
भरो अमर्ष क्रोध सों छाय।
निरह न लख्यो सो चलो छपाय॥

१८ हम मातुल यह कियो विचार।
असमरथ[1] सहो न जात उदार॥
गरल खाहि कै अग्नि प्रवेश।
करैं मरण जिय चेतन वेश॥

दोहा

१९ शक्तिमान को गुरु हुवै।
सहै असमर्थ उदार॥
बुद्धिमान लखि शत्रु को।
आपुहि निबलाकार॥

२० इतो पुरुष न खण्ड सम।
हैं हम मातुल भूप॥
सहैं जो सम्पति शत्रु की।
लखि अति उग्र स्वरूप॥

२१ सार्वभौम वसु मान अति।
कान्हो यश महान॥
या विधि वा लखि शत्रु को।
जरैं न हमैं समान॥

२२ [illegible] को असमय है।
नाहीं [illegible] उदार
एकाकी असहाय है।
[illegible] नहीं विचार।

[illegible]
[illegible] ८

दुर्योधन—

३४ मेरे सुहृद न सैन आने होय बस नृपधर्म।
कहहु तौन उपाय मातुल महामति अति पर्म॥

शकुनि—

द्यूत प्रिय नृपधर्म जानत द्यूत खेलत भूप।
महवान[1] कीन्हें द्यूत तें न निवृत होत अनूप॥

३५ द्यूत में हौं कुशल मो सम नहीं त्रिभुवन माहिं।
करहु तुम आह्वान याते द्यूत को नरनाह॥
राज्य सह श्री जीति ताको लहहिंगे हम सर्व।
कहहु तुम धृतराष्ट्र पै यह मंत्र परम अखर्व॥

दुर्योधन—

३६ कुरुराज सों तुम प्रथम मातुल आप कहिये जाय।
प्रथम नहिं कहि सकत हम फिर कहब औसर पाय॥

वैशम्पायन—

देखि आये सह सुयोधन धर्मनृप को यज्ञ।
धृतराष्ट्र सों यह भाँति सौं बल कहन लागे तज्ञ॥

३७ गाँधार जा के तनय सों जो कियो मन्त्र उदार।
शकुनि नृप धृतराष्ट्र सों तेहि मन्त्र के अनुसार॥

शकुनि—

कहन लागे नृप सुयोधन भयो दुर्बल भूरि।
जानिये नहिं कौन हिय माह कारण पूरि॥

३८ रहत चिन्ता भरे होय विवर्ण लोचन सर्व।
परत जानि न शत्रु सम्भव कौन हेतु अखर्व॥

[1] आह्वान-निमंत्रण

नहीं तुम सुत ज्येष्ठ को यह शोक करत विचार।

धृतराष्ट्र—

कहि सुयोधन शोक को का मूल पत्र उदार॥

३९ सुनो चाहत शकुनि मोसों कहत दुर्बल तोहि।
पुत्र कृशता कौन कारण परत हमको जोहि॥
राज्य को अधिकार तुमको दियो है हम सर्व।
सकल भ्राता सुहृद तुम सों करत प्रीति अखर्व॥

४० वसन दिव्य सुस्वादु भोजन यान तुर सुख दान।
परम सज्जा गेह उत्तम वास रूप निधान॥
प्रजा जन अनुसरत शासन करत आज्ञा जौन।
पुत्र दुर्बल दीनता को कहहु कारण कौन॥

दुर्योधन—

४१ करत भोजन वसन पहिरत यथा कुपुरुष भूप।
लखत धारि अमर्ष को हम काल अन्त अनूप॥
कोप करि कै प्रजन को वश करत हौं सब तौन।
दुःख मेटन रहत सब दिन पुरुष जानौं तौन॥

४२ सन्ताप दाया गर्व अरु जो करत धारण नृप।
[illegible]॥
[illegible]।
[illegible]॥

४३ [illegible]।
[illegible]॥
[illegible]।
[illegible]॥

कहत हम विस्तार सों हैं सुनों आनन्द भीन।
बार बार सो कहत हम फिर सुनो इच्छा जौन॥

विदुर—

६१ व्यवसाय में यदि रावरे हम नहीं मोहत धर्म।
पुत्रभेद न होत याते कीजिये सो कर्म॥

प्रेमरस

१७–अन्योक्ति

[बाबू मैथिलीशरण गुप्त विरचित एवं "[illegible]" में प्रकाशित]

चन्दन

द्विजिह्व, भोजी, बहु दुःखकारी,
अत्यन्त द्वेषी विष वन्हिधारी।
कारे करालाङ्ग भुजङ्ग जैसे,
पाटीर! धारे निज अङ्ग कैसे?

दीपक

सप्रेम आये उपवन से मेरे
पतङ्ग ये सुन्दर पङ्ख वारे
हे दीप! जो प्रेम किया न जाये
तो व्यर्थ क्यों तू इनको जला दे?

काक

[illegible]
[illegible]

हेतु यही है जो इनका अनुकरण न करते।
तो नट नाटक में मानो फिर वेष न धरते॥

१२ तार लगा कर ताने बाने से लग पड़ना।
जाल फन्द में फाँस फाँस आखेट पकड़ना॥
लूता¹ ने चोखे चोखे कौतुक दिखलाये।
कस्सी, कोरी, चिड़ीमार, मछुवे सिखलाये॥

१३ पहले से पूरा प्रबंध सब कर लेते हैं।
भोजन की सामग्री बिल में भर लेते हैं॥
चौमासे भर बैठे उस धन को खाते हैं।
लाभ अल्प-व्यय का हमको समझाते हैं॥

१४ सारस जंगल में समोद मंगल करते हैं।
अन्य विहंगों के अनेक जोड़े करते हैं॥
मिथ्या हार विहार त्याग सुख से रहते हैं।
धर्म गृहस्थों के इनके गुण गण कहते हैं॥

१५ घेर मोरनी मोरों को आमर भरती है।
यों ही पति-दृग-नीर गर्भ धारण करती है॥
जो न दिखावें नाच-राग-रस रूप रुप देखी।
तो न नाचते मोद बेश्या-जन अविवेकी॥

१६ कोयलें ये अपने बच्चों को पलवाती हैं।
पेड़ पेड़ पर मोद भरी मंगल गाती हैं॥
बायस को बहलाय चतुर कहला चहती हैं।
स्वाँति पाप को काम वही सुख से रहती हैं॥

१७ स्वाति-बूँद की आश सुधाकुर चातक होते।
पिऊ पिऊ रोते पर जल में चोंच न बोते॥

१ लूता-मकड़ी।

जान लिया उद्यम उदार की जड़ खेती है।
एक बीज के पूत सैकड़ों कर देती है॥

४४ गुल्म, लता, तरु पुञ्ज, पसारें छदन छबीले।
पल्लव भूले फूल फलों फल धार फबीले॥
जो हमको करतार न ऐसे दृश्य दिखाता।
पुष्प वाटिका विशद बनाना कौन सिखाता॥

४५ उपजे क्षिति पर छत्रधार छत्रक छवि छाये।
इन्द्रफलक पद पाय कुकुरमुत्ता कहलाये॥
जो इनके आकार गुणीजन देख न पाते।
तो सुन्दर छतरी छाते किस भाँति बनाते॥

४६ मूल, दण्ड, दल, फूल, फलों, फल, गोंद, गिरी, रस।
बीज सुरंग सुवास तेल तृण तूल काठ कस॥
दान करें सरवस गुल्म लतिका द्रुम, निशिदिन।
हमको कौन बनाता परउपकारी इन बिन॥

४७ फूल गये सब कांस अन्त पावस का आया।
मेघों ने यश पाय कूच का शंख बजाया॥
सेत-कश धारी नर यों ही मर जाते हैं।
विरले बादल का भी करनी कर जाते हैं॥

४८ जिनकी [illegible] गाना हम सुनते हैं।
वे निर्जीव [illegible] समझे जाते हैं॥
जो स्वाभाविक [illegible] न बनाते।
तो सुन [illegible] न बनाते॥

४९ हम लोगों ने [illegible] लिया है
क्या [illegible] लिया है॥

जान लिया उद्यम उदार की जड़ खेती है।
एक बीज के पूत सैकड़ों कर देती है॥

४४ गुल्म, लता, तरु वृक्ष, पसारें छदन छबीले।
पल्लव फूले फूल फलों फल धार फबीले॥
जो हमको करतार न ऐसे दृश्य दिखाता।
पुष्प वाटिका विशद बनाना कौन सिखाता॥

४५ उपजे छिति पर छत्रधार छत्रक छवि छाये।
इन्द्रफनक पद पाय कुकुरमुत्ता कहलाये॥
जो इनके आकार गुणीजन देख न पाते।
तो सुन्दर छतरी छाते किस भाँति बनाते॥

४६ मूल, दण्ड, दल, फूल, फलो, फल, गोंद, गिरी, रस।
बीज सुरंग सुवास तेल तृण तूल काठ कस॥
दान करें सरवस गुल्म लतिका द्रुम, निशिदिन।
हमको कौन बनाता परउपकारी इन बिन॥

४७ फूल गये अब काँस अन्त पावस का आया।
मेघों ने यश पाय कूच का शंख बजाया॥
खेत-कृषक भारी नर यों ही मर जाते हैं।
बिरले बादल की भाँति करनी कर जाते हैं॥

४८ जिनकी ध्वनि अगुआ [illegible] हम सुनते हैं।
वे निर्जीव सजीव [illegible] समझे जाते हैं॥
जो स्वाभाविक शब्द [illegible] न बनाते।
तो मुनि कल्पना [illegible] न बनते॥

४९ हम लोगों ने अब तक [illegible] कुछ जान लिया है
क्या विद्या का अन्त इसी को मान लिया है॥

इसके पीछे जिसकी धिक् धिक् धाता है।
वह धीर समालोचक पदवी पाता है॥

१७ पढ़ मूल ग्रन्थ को अर्थ प्रयोजन जाने।
फिर गद्य पद्य के गौरव को पहचाने॥
उस ग्रन्थ प्रणेता को अरि मित्र न माने।
अनुभूत निबन्धों के गुण दोष बखाने॥
जिसके मन में यों सत्य समा जाता है।
वह धीर समालोचक पदवी पाता है॥

१८ जिस आगम का आशय न समझ में आवे।
उस पै न वृथा अटकल की लाग लगावे॥
जब अर्थ भाव मन में समस्त भर जावे।
तब जैसा हो वैसा लिख लेख बनावे॥
सब ग्रंथों का मर्म भाव जिसको आता है।
वह धीर समालोचक पदवी पाता है॥

१९ लिख नाम ग्रन्थ का कीमत और ठिकाना।
फिर जिल्द छपाई कागज़ के गुण गाना॥
कहि ग्रन्थकार को कविवर पिण्ड छुड़ाना।
सब की रचना का खोटा खरी बनाना॥
जिसको न लेख ऐसा रसाद आता है।
वह धीर समालोचक पदवी पाता है॥